खण्ड . 3
कादम्बरी (शुकनासोपदेश मात्र)

इकाई 1. गद्य काव्य परम्परा, बाण की कादम्बरी का विहंगावलोकन, शुकनासोपदेश का परिचय

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना

संस्कृत गद्य साहित्य शास्त्र से सम्बन्धित खण्ड तीन की यह पहली इकाई है। इसके पूर्व की इकाइयों में आपनें कुमारसम्भव नामक महाकाव्य का अध्ययन किया है। इस इकाई में आप गद्यकाव्य परम्परा व महाकवि बाण के बारे में जानेंगे।

वैदिक साहित्य में गद्य साहित्य का रूप उनमें वर्णित आख्यानों में दिखाई पड़ता है। इन आख्यानों में गद्य के साथ पद्य का भी भाग मिलता है जिसे ''गाथा'' कहते हैं। ऋग्वेद में 'नाराशंसी' गाथाओं का उल्लेख है। वैदिक गद्य में छोटे-छोटे सरल एवं सुबोध शब्दों का प्रयोग है। इसी क्रम में बाणभट्ट की कादम्बरी एवं उसके अंशमात्र शुकनासोपदेश का परिचय आपके अध्ययन के लिए इस इकाई में प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि संस्कृत गद्य साहित्य का उद्भव किस प्रकार हुआ। इसमें मनुष्यके जीवन की प्रेरणादायीं बातों का उल्लेख हुआ है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- बाणभट्ट के व्यक्तित्व के विषय में बता सकेगे।
- बाणभट्ट की कृतियों के विषय उल्लेख करेंगे।
- बाणभट्ट के समय से सम्बद्ध तथ्यों का परीक्षण करेंगे।
- संस्कृत गद्य परम्परा को बताएंगे।
- कादम्बरी की कथा व उसके अंश शुकनासोपदेश का परिचय बतायेंगे ।

1.3 गद्य काव्य परम्परा, कादम्बरी का विहंगावलोकन, शुकनासोपदेश का परिचय

संस्कृत के श्रेष्ठ गद्यकवि - बाण

सुबन्धु की अलंकृत गद्यशैली के श्रेष्ठ कलाकार हैं बाणभट्ट। वस्तुतः बाण की शैली सुबन्धु की अलंकृत शैली की प्रौढ़ता के साथ दण्डी के पदलालित्य का भी समावेश करती है।

जीवन एवं समय

बाण ने अपनी रचनाओं में अपने विषय में पर्याप्त सूचनायें दी हैं। हर्षचरित के आरम्भ के उच्छवासों में उन्होंने अपने पूर्वजों तथा स्वयं अपना परिचय कथा के माध्यम से दिया है। इसी प्रकार उन्होंने कादम्बरी के आरम्भ के पद्यों में अपने वंश का वर्णन किया है। बाण के पिता का नाम चित्रभानु तथा माता का नाम राजदेवी था। शैशवावस्था में ही बाण की माता का निधन हो गया और चौदह वर्ष की अवस्था में वे पितृविहीन हो गये। युवावस्था में बाण किसी अनुशासन

के बन्धन से मुक्त होकर इधर-उधर घूमने लगे। वे अनेक राजाओं के यहाँ भी गये और अनेक विद्वानों की संगति प्राप्त कर शास्त्रीय चर्चाएँ भी करते रहे। विविध प्रकार के कार्यों एवं जीवनवृत्तियों वाले अनेक लोग उनके मित्र थे। इन मित्रों की लम्बी सूची बाण ने अपनी हर्षचरित में दी है। इस देशाटन से उन्हें समाज के विभिन्न वर्गों का पर्याप्त ज्ञान और अनुभव प्राप्त हुआ। बाण सम्राट हर्षवर्धन के समकालीन थे। अतः उनका समय पर्याप्त निश्चित है। हर्षवर्धन ने 606 ई0 से 648 ई0 तक शासन किया था। इस प्रकार बाण का समय सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है। अनेक बाह्य एवं आन्तरिक साहित्यिक प्रमाणों से भी बाण का यही समय सिद्ध होता है।

रचनायें

महाकवि बाण की तीन रचनायें मानी जाती हैं। मुकुटताडितक नाम का नाटक, हर्षचरित नाम की आख्यायिका तथा कादम्बरी नाम की कथा। इस नाटक का उल्लेख सरस्वतीकण्ठाभरण के प्रणेता भोज ने किया है और नलचम्पू के टीकाकार चंद्रपाल और गुणविजयगणि ने इसे बाण की रचना के रूप में निर्दिष्ट किया है। यह महाभारत के कथानक के ऊपर आधारित रचना थी, जिसमें अन्त में भीम दुर्योधन के मुकुट को तोड़ा डालते हैं। यह नाटक उपलब्ध नहीं है और यह सम्भावना की जा सकती है कि बाण की इस प्रकार की एकाध और रचनायें थीं, जो अनुपलब्ध हैं। चण्डीशतक नाम की एक ऐसी रचना बाण के नाम से उल्लिखित है।

हर्षचरितम्

बाण की गद्य रचना हर्षचरितम् एक आख्यायिका है। सम्भवतः हर्षचरित ही आख्यायिका के वर्ग में सबसे प्राचीन रचना है। इसका विभाजन आठ उच्छवासों में है। प्रथम उच्छवास के आरम्भ में 21 श्लोकों में कवि ने अपने पूर्ववर्ती कवियों और उनकी कृतियों का प्रशंसापूर्वक स्मरण किया है, यथा व्यास, वासवदत्ता, भट्टार हरिश्चन्द्र, सातवाहन, प्रवरसेन, भास, कालिदास, बृहत्कथा। हर्षचरित के आरम्भिक तीन उच्छवासों में बाण ने अपनी आत्मकथा ही मनोमन शैली में प्रस्तुत की है। उनका राजा हर्षवर्धन से किस प्रकार सम्पर्क हुआ, इसका भी विवरण यहाँ प्राप्त होता है। तृतीय उच्छवास में बाण अपने गाँव लौटकर आने तथा अपने चचेरे भाइयों के आग्रह पर हर्ष के चरित का वर्णन करने का उल्लेख करते हैं।हर्षचरित में वर्णित घटनायें संक्षेप में इस प्रकार हैं - चतुर्थ उच्छवास - राजा प्रभाकरवर्धन और रानी यशोमती का वर्णन क्रमशः उनके पुत्रों राज्यवर्धन और हर्षवर्धन तथा पुत्री राज्यश्री का जन्म होता है। राज्यश्री का मौखरिवंश के राजा ग्रहवर्मा के साथ विवाह होता है। पंचम उच्छवास - राज्यवर्धन अपने भ्राता हर्ष तथा सेना के साथ हूणों को जीतने के लिए प्रस्थान करता है, किन्तु पिता की बीमारी का समाचार सुनकर हर्ष वापस लौट आते हैं। यशोमती प्रभाकरवर्धन की मृत्यु होने के पूर्व सती हो जाती है। षष्ठ उच्छवास - राज्यवर्धन वापस लौटता है, पिता द्वारा हर्ष को राज्य का भार सौंप दिया जाता है, ग्रहवर्मा की मृत्यु हो जाती है और मालव नरेश राज्यश्री को बन्दी बना लेता है। राज्यवर्धन सेना सहित मालव नरेश पर आक्रमण के लिए प्रस्थान करता है और उस पर विजय

प्राप्त करता है। गौड देश के राजा शशांक के साथ युद्ध में राज्यवर्धन की मृत्यु हो जाती है। सप्तम उच्छवास - हर्ष दिग्विजय यात्रा के लिए निकलता है और मालवराज पर विजय प्राप्त करता है। अष्टम उच्छवास - एक शबर द्वारा हर्ष को राज्यश्री के सती होने की तैयारी करने की सूचना दी जाती है। हर्ष राज्यश्री के पास पहुँचता है, बौद्ध भिक्षु दिवाकरमित्र द्वारा राज्यश्री को समझाया जाता है। हर्ष भी दिग्विजय के बाद गेरुआ वस्त्र धारण करने का निश्चय करता है।

कादम्बरी

बाणभट्ट की प्रख्यात गद्य रचना कादम्बरी एक कथा है। कथानक कवि-कल्पित हैं और इसमें चन्द्रापीड एवं पुण्डरीक के तीन जन्मों का वृत्तान्त प्रस्तुत किया गया है। कादम्बरी दो भागों में है - पूर्वभाग और उत्तर भाग। पूर्व भाग सम्पूर्ण ग्रन्थ का दो तिहाई भाग है और इसे ही बाण की कृति माना गया है। उत्तर भाग की रचना बाण की मृत्यु के बाद उनके पुत्र भूषणभट्ट ने की है।कादम्बरी की संक्षिप्त कथा इस प्रकार है। विदिशा नगरी के राजा थे शूद्रक, जो अत्यन्त प्रतापी और कलाविद् थे। एक दिन प्रातः वे अपनी राजसभा में बैठे थे, तभी प्रतीहारी ने आदेश प्राप्त कर एक चाण्डाल कन्या को सभा में प्रवेश कराया। चाण्डाल कन्या के हाथ में सोने का पिंजरा था, जिसमें वैशम्पायन नाम का शुक था। शुक ने अपना दाहिना चरण उठाकर श्लोक द्वारा राजा का अभिवादन किया। शुक द्वारा राजा शूद्रक के समक्ष कथा का आरम्भ - इस शुक के विषय में राजा को महान कौतूहल हुआ और चाण्डाल कन्या तथा शुक के भोजन एवं विश्राम कर लेने पर राजा ने उस शुक से अपने विषय में बताने को कहा। शुक ने अपनी कथा सुनाई और बताया कि वह विन्ध्याटवी में अपने वृद्ध पिता के साथ रहता था। एक बहेलिये ने अन्य शुकों के साथ उसके पिता का वध कर दिया और नीचे फेंक दिया। पिता के पंखों के भीतर छिपकर वह भी नीचे गिरा, किन्तु बच गया। अपने प्राण बचाने के लिए वह झाड़ियों में छिप गया और बहेलिये के चले जाने के बाद उस मार्ग से जाने वाले ऋषिकुमार हारीत उसे दयावश अपने साथ लेकर महर्षि जाबालि के आश्रम आये। जाबालि ने अपने शिष्यों को शुक के पूर्व जन्म की कथा इस प्रकार सुनाई।

जाबालि द्वारा आश्रम के शिष्यों के समक्ष शुक के पूर्व जन्म तथा चन्द्रापीड की कथा सुनाना - उज्जयिनी में तारापीड नाम के राजा थे। उनकी महारानी का नाम विलासवती था। राजा के महामन्त्री का नाम शुकनास और महामन्त्री की पत्नी का नाम मनोरमा था। बहुत दिनों की पूजा अर्चना के बाद राजा तारापीड को पुत्र की प्राप्ति हुई और उसी दिन शुकनास के यहाँ भी एक पुत्र ने जन्म लिया। राजा के पुत्र का नाम चन्द्रापीड तथा शुकनास के पुत्र का नाम वैशम्पायन रखा गया। दोनों ने साथ-साथ गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त की। चन्द्रापीड के गुरुकुल से लौटने पर पिता तारापीड ने उसका यौवराज्याभिषेक किया। इस अवसर के पूर्व चन्द्रापीड मन्त्री शुकनास से मिलने गया और शुकनास ने एक सारगर्भित उपदेश दिया, जो शुकनासोपदेश नाम से प्रसिद्ध है। अभिषेक के बाद चन्द्रापीड दिग्विजय यात्रा पर निकला। अनेक राजाओं को परास्त कर वह हिमालय के निकट विश्राम करने के लिए रुका। एक दिन शिकार खेलने के लिए निकलने पर उसने किन्नर-मिथुन को देखा और उत्सुकतावश उनका पीछा करते हुए बहुत दूर निकल गया।

किन्नर-मिथुन अदृश्य हो गये, तब जल की खोज में वह अच्छोद सरोवर के पास पहुँचा। वहाँ जल पीकर अपने अश्व को बाँधकर विश्राम करने लगा, तब ही उसे वीणा की ध्वनि सुनायी पड़ी, जिसकी खोज करते हुए उसने सरोवर के तट पर स्थित शिव के मन्दिर में वीणा बजाकर स्तुति करती हुई एक युवती को देखा। उसे देखकर वह चकित हुआ। युवती उसे अपने आश्रम में ले गयी और उसने फल आदि से चन्द्रापीड का सत्कार किया। चन्द्रापीड के आदरपूर्वक प्रश्न करने पर उस युवती ने, जिसका नाम महाश्वेता था, अपनी कथा इस प्रकार सुनाई।

महाश्वेता द्वारा अपनी कथा सुनाना

महाश्वेता ने बताया कि वह गन्धर्वराज हंस तथा गौरी नाम की अप्सरा की पुत्री है। एक दिन वह अपने माता के साथ सरोवर पर आयी तो उसे पुष्प की अद्भुत गन्ध मिली तब उसने एक ऋषिकुमार को देखा, जिनके कान के ऊपर अद्भुत गन्ध वाला पुष्प था। साक्षात्कार होते ही दोनों एक दूसरे की ओर प्रेम से आकृष्ट हो गये। ऋषिकुमार का नाम पुण्डरीक था। उनके साथ उनका मित्र कपि´जल था। महाश्वेता पुण्डरीक से पुष्प लेकर अपने भवन चली आयी, किन्तु पुण्डरीक उसके विरह में अतिशय सन्तप्त हो उठे। कपि´जल ने महाश्वेता से मिलकर आग्रह किया कि अविलम्ब पुण्डरीक से मिलकर उसके प्राणों को बचा लीजिए। रात्रि को जब उपयुक्त समय देखकर महाश्वेता सरोवर के पास पहुँची तब तक पुण्डरीक के जीवन का अन्त हो चुका था। महाश्वेता पुण्डरीक के शरीर से लिपट कर विलाप करने लगी। उसी समय चन्द्रमण्डल से एक दिव्य पुरुष निकला और पुण्डरीक के शव को लेकर आकाश में चला गया। जाते-जाते उसने महाश्वेता से कहा कि इससे तुम्हारा अवश्य मिलन होगा। तब से महाश्वेता अपने प्रियतम से मिलन की आशा में भगवान शिव की आराधना में लगी हुई है।

कादम्बरी की कथा

रात्रि में विश्राम के समय महाश्वेता ने चन्द्रापीड से अपनी सखी कादम्बरी के विषय में बताया कि कादम्बरी गन्धर्वराज चित्ररथ की पुत्री है और अपने माता-पिता के बार-बार कहने पर भी विवाह के लिए सहमत नहीं हो रही है। दूसरे दिन महाश्वेता चन्द्रापीड को साथ लेकर कादम्बरी से मिलने गयी। वहाँ चन्द्रापीड और कादम्बरी में बातें हुई और वे परस्पर प्रगाढ़ प्रेम बन्धन में बँध गये। कादम्बरी से मिलकर वापस महाश्वेता की कुटी में आने पर चन्द्रापीड को अपनी सेना मिली और पिता का पत्र मिला, जिसमें उसे तत्काल राजधानी बुलाया गया था। चन्द्रापीड ने अपनी पानवाली पत्रलेखा को कादम्बरी के पास भेजा और स्वयं राजधानी चला गया। कुछ दिन बाद पत्रलेखा जब लौटकर राजधानी पहुँची, तो उसने चन्द्रापीड से कादम्बरी की विरहदशा का वर्णन किया। चन्द्रापीड को इसी समय यह सूचना मिली कि उसका मित्र वैशम्पायन, जो महामन्त्री शुकनास का पुत्र था, अच्छोद सरोवर में स्नान करने के बाद वहाँ से लौटना नहीं चाहता, वह वहाँ पागल की तरह कुछ ढूँढ़ रहा है। चन्द्रापीड उसे वापस ले आने के लिए चल पड़ा। महाश्वेता ने बताया कि एक ब्राह्मण युवक उसके पास आकर प्रणय निवेदन करने लगा, जिस पर कुपित होकर उसने उसे शुक बन जाने का शाप दे दिया। वह शुक बन गया, तब ज्ञात हुआ कि

वह चन्द्रापीड का मित्र वैशम्पायन था। अपने मित्र से बिछुड़ने और कादम्बरी से मिलन की सम्भावना न होने के दुःख में चन्द्रापीड भी तत्काल निर्जीव होकर भूमि पर गिर पड़ा। उधर कादम्बरी यह सुनकर कि चन्द्रापीड महाश्वेता की कुटी में आये हैं , बड़ी आशा से मिलने के लिए आयी, किन्तु उसे उसका शव ही मिला। परम दुःख से व्यथित होकर वह सती होने के लिए उद्यत हुई, किन्तु एक आकाशवाणी ने उसे आश्वस्त किया कि उसका चन्द्रापीड से मिलन होगा। वह चन्द्रापीड के मृत शरीर की रखवाली करने लगी। उसी समय पत्रलेखा चन्द्रापीड के अश्व इन्द्रायुध को लेकर सरोवर में कूद गयी। कुछ क्षण बाद सरोवर से एक ब्राह्मण युवक निकला, जो पुण्डरीक का मित्र कपि´जल था। उसने महाश्वेता को बताया कि पुण्डरीक पृथ्वी पर वैशम्पायन शुक के नाम से उत्पन्न हुआ है और वह भी एक ऋषि के शाप से इन्द्रायुध नाम का अश्व बन गया था। उसी ने महाश्वेता से यह भी बताया कि उसने जिसे शुक बन जाने का शाप दिया था वह कोई और नहीं पुण्डरीक था, तब महाश्वेता छाती पीट-पीट कर रोने लगी। कपि´जल ने उसे आश्वासन दिया कि अब उसके दुःखों का अन्त निकट है और वह स्वयं आकाश में चला गया। अपने पुत्रों की मृत्यु का समाचार जानकर राजा तारापीड, महारानी विलासवती तथा महामन्त्री शुकनास और उनकी पत्नी मनोरमा भी उस स्थान पर आये। तारापीड वहीं तपस्या में लग गये। मूर्च्छित कादम्बरी होश में आयी और चन्द्रापीड के शरीर की सेवा में लग गयी।

शुक का राजा शूद्रक से अपने विषय में बताना

राजा शूद्रक के समीप चाण्डालकन्या द्वारा लाये गये शुक ने राजा से अपने विषय में आगे की कथा इस प्रकार बतायी - महर्षि जाबालि ने जब अपने शिष्यों को मुझसे सम्बद्ध जो कथा सुनायी, उससे मुझे अपना पूर्वजन्म स्मरण हो आया और मुझे यह ज्ञात हो गया कि मैं ही महामन्त्री शुकनास का पुत्र वैशम्पायन हूँ। जब मेरे पंख निकल आये, तब मैं अपने मित्र चन्द्रापीड को ढूँढ़ने निकला, किन्तु चाण्डाल कन्या द्वारा पकड़ लिया गया।

चाण्डाल कन्या द्वारा कथा को पूरी करना

इसके बाद चाण्डाल कन्या ने राजा को बताया कि राजा शूद्रक ही चन्द्रापीड हैं। वह स्वयं लक्ष्मी है और वैशम्पायन उसका पुत्र है। राजा शूद्रक को अपना पूर्व जन्म याद हो आया। उधर महाश्वेता की कुटी में वसन्त छा गया और कादम्बरी ने जैसे ही चन्द्रापीड के शरीर का आलिंगन किया, वह ऐसे जीवित हो उठा जैसे नींद से जागा हो। उसी समय शूद्रक ने भी अपना शरीर त्याग दिया। महाश्वेता की कुटी में कुछ ही क्षण में पुण्डरीक अपने मुनिकुमार वाले रूप में प्रकट हुआ और उसका महाश्वेता से मिलन हो गया। सर्वत्र आनन्द छा गया।

इस प्रकार इस कथा का नायक है चन्द्रापीड और नायिका है कादम्बरी। सहनायक और सहनायिका हैं - पुण्डरीक और महाश्वेता। यह तीन जन्मों की मिली-जुली कहानी है, जिसका अधिकांश भाग शुक द्वारा महर्षि जाबालि की कथा के अनुसार शूद्रक से कहा जाता है। कादम्बरी के आरम्भ में बाण ने बीस पद्यों में मङ्गलाचरण, सज्जन की प्रशंसा और दुर्जन की निन्दा, अपने वंश के पूर्वजों का आलंकारिक एवं मनोरम वर्णन, तथा कथा के गुणों का उल्लेख

किया है। चन्द्रापीड की ताम्बूलकरंकवाहिनी पत्रलेखा, जो चन्द्रापीड के चले आने पर भी कादम्बरी के पास रह गयी थी, लौटकर चन्द्रापीड की राजधानी आती है, इस वर्णन के साथ ही कादम्बरी कथा का पूर्वभाग समाप्त होता है।

कादम्बरी की समीक्षा

कादम्बरी एक कथा है और कथा का कथानक कविकल्पित होता है, फिर भी बाण की कादम्बरी की कथा गुणाढ्य की बृहत्कथा के कथानक से कई समानताएँ प्रदर्शित करती हैं, जिससे यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि बाण को कादम्बरी कथा की प्रेरणा गुणाढ्य की बृहत्कथा से मिली है। इसका संस्कृत रूपान्तर सोमदेव का कथासरित्सागर है, जो बाण के समय के बहुत बाद रचा गया। बाण में कथानक को सजाने और जीवन्त बनाने की विलक्षण प्रतिभा है जिससे कादम्बरी कथा अद्वितीय रूप प्राप्त कर लेती है। कादम्बरी की मुख्य कथा के साथ प्रसंगवश अनेक स्थलों पर बाण ने लम्बे वर्णन किये हैं और अपनी कविप्रतिभा एवं अलंकार प्रयोग का भरपूर प्रदर्शन किया है, जिससे ऐसे स्थलों पर कथा की गति मन्थर हो गयी है, किन्तु उन वर्णनों का अपना सौन्दर्य पाठक को इतना अधिक बाँध लेता है कि वह कथा के इस मन्द प्रवाह की ओर ध्यान नहीं दे पाता। यद्यपि कादम्बरी कथा की घटनायें जटिल हैं, तथापि वे मुख्य कथा के साथ दृढ़ता से जुड़ी हुई हैं। उसमें उस प्रकार की जटिलता नहीं है जैसी जटिलता दण्डी के दशकुमारचरित में मिलती है। कथा के प्रति पाठक के उत्सुकता बनाये रखने में बाण दक्ष हैं। कादम्बरी में प्रत्येक घटना का वर्णन अगली घटना के लिए जिज्ञासा उत्पन्न करता है।

चरित्र चित्रण

बाण को जीवन के हर क्षेत्र का पूरा अनुभव था। यही कारण है कि वे पुत्रों के चरित्र-चित्रण में अपने अनुभव और निरीक्षण की प्रतिभा के कारण सफल हुए हैं। हर्षचरित में तो उन्हें इसके लिए अवसर ही नहीं मिला है, किन्तु कादम्बरी में वे अनेक प्रकार के चरित्रों का सूक्ष्म वर्णन कर सके हैं। कादम्बरी के चन्द्रापीड, पुण्डरीक, कादम्बरी और महाश्वेता जैसे उच्च वर्ग के पात्र तो हैं ही, साथ ही बाण ने चाण्डालकन्या और शबर सेनापति जैसे अरण्यवासी पात्रों का भी सफलतापूर्वक चित्रण किया है। जाबालि, हारीत और कपिञ्जल जैसे ऋषियों एवं मुनि कुमारों के वर्णन भी स्वाभाविक हैं। बाण ने अतिमानवीय पात्रों को मानवीय धरातल पर लाकर स्वर्ग और पृथ्वी, गन्धर्वलोक तथा मुनियों के आश्रम को एक साथ सम्बद्ध कर दिया है। उनका प्रत्येक चरित्र अपने आप में विस्मय और रहस्य से परिपूर्ण है। उनके चरित्रों में एक असाधारण आकर्षण और औदात्य है। प्रेम के उदात्त स्वरूप का दर्शन बाण ने महाश्वेता और कादम्बरी के चरित्रों द्वारा कराया है। कादम्बरी अपने मृत प्रियतम से मिलन की आशा में सम्पूर्ण समर्पण से उसके शरीर की रक्षा और सेवा करती है और महाश्वेता अपने प्रियतम की प्राप्ति के लिए तपस्या का आदर्श प्रस्तुत करती है। इन चरित्रों के प्रति एक स्वाभाविक श्रद्धा भाव पाठक के मन में उत्पन्न होता है। भाग्य की क्रूर विडम्बना से बार-बार छली गयी महाश्वेता नारी के धैर्य एवं सहिष्णुतामय गाम्भीर्य का उदाहरण प्रस्तुत करती है। बाण ने अपने प्रमुख नारीपात्रों में एकनिष्ठ

एवं त्यागमय प्रेम और चरित्र का बल दिखाकर प्रेम के अलौकिक पक्ष को आलोकित किया है। पुण्डरीक तपस्वी का आदर्श रूप है, किन्तु युवावस्था में स्वभावतः मन को कामविकार किस प्रकार वशीभूत कर लेता है, इसका प्रबल उदाहरण भी बाण ने इस चरित्र के माध्यम से प्रस्तुत किया है। काम के वशीभूत पुण्डरीक अपना जीवन भी त्याग देता है। चन्द्रापीड एक आज्ञाकारी पुत्र, योग्य शासक, वीर सेनानी होने के साथ ही एक आदर्श मित्र और आदर्श प्रेमी है। वस्तुतः बाण ने मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण की अद्भुत क्षमता कादम्बरी में प्रदर्शित की है।

वर्णन का सौन्दर्य

गद्यकवि बाण की सबसे प्रमुख विशेषता उनकी वर्णन की प्रतिभा है। वे अपनी सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति द्वारा प्रत्येक चित्र अथवा भावना का सजीव वर्णन करते हैं। वर्णन कौशल द्वारा वे किसी वस्तु या स्थिति का शब्दों द्वारा चित्र बनाकर उसके रूप, रस, गन्ध का इन्द्रिय-प्रत्यक्ष सा करा देते हैं। कथामुख में ही राजसभा में उन्नत सिंहासन पर बैठे हुए राजा शूद्रक का, सभाभवन की प्रत्येक वस्तु का वे उपमाओं एवं उत्प्रेक्षाओं से इतना विस्तृत वर्णन करते हैं कि पाठक स्वयं को वहाँ उपस्थित सा अनुभव करने लगता है। विन्ध्याटवी की भयावहता तथा पम्पासरोवर की निर्मलता का वर्णन भी इसी प्रकार का है। सभाभवन में बैठे राजा शूद्रक का यह वर्णन द्रष्टव्य है -

प्रविश्य च नरपतिसहस्रमध्यवर्तिनमशनिभयपुलिजतकुलशैलमध्यगतमिव कनकशिखरिणम्, अनेकरत्नाभरणकिरण जालकान्तरिता वयमिन्द्रायुधसहस्रस´ छादिताष्टदिग्विभागमिव जलधरदिवसम,अवलम्बितस्थूलमुक्ताकलापस्य कनकशृङ्खलानियमितमणिदण्डिकाचतुष्टयस्य गगनसिन्धुफेनपटलपाण्डुरस्य नातिमहतो दुकूलवितानस्याधस्तादिन्दुकान्तमणिपर्यङ्कनिषण्णम् ...

इसी प्रकार महाश्वेतावृत्तान्त में महाश्वेता की कुटी की एक-एक वस्तु का वर्णन बाण इस प्रकार करते हैं कि पाठक स्वयं को वहाँ उपस्थित जैसा अनुभव करता है -

हिमहारहरहासधवलैश्चोभयतःक्षरद्भिर्निर्झरैर्द्वारावलम्बितचलच्चामरकलापामिवोपलक्ष्य माणाम् अन्तःस्थापितमणिकमण्डलुमण्डलाम्, एकान्तावलम्बितयोगपट्टिकाम्, विशाखिकाशिचारनिबद्धनारिकेलीफलवल्कल धौतोपानद्युगोपेताम् ... इन्दुमण्डलेनेव टङ्कोत्कीर्णेव शङ्खमयेनेव भिक्षाकपालेनाधिष्ठितां सन्निहितभस्मालाबुकां गुहाम् अद्राक्षीत्।

सौन्दर्य चाहे प्रकृति का हो या मानव-रूप का, बाण उसके वर्णन में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ते। विन्ध्याटवी, पम्पासरोवर, अच्छोद सरोवर के वर्णन में, महाश्वेता की कुटी बनी हुई गुफा के वर्णन में या वसन्त ऋतु के आगमन के वर्णन में उनके प्रकृति वर्णन का सौन्दर्य देखा जा सकता है। बाण ने वर्णन के लिए विषयों का इतना व्यापक क्षेत्र चुना है कि विद्वानों का यह कथन सर्वथा समीचीन है कि '**बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्**'।

रसाभिव्यक्ति

श्रेष्ठ गद्यकार बाण रस की अभिव्यंजना में भी सफल हैं। कथा की प्रशंसा के माध्यम से अपनी ही कथा की विशेषताओं का संकेत करते हुए वे कहते हैं -

स्फुरत्कलालापविलासकोमला करोति रागं हृदि कौतुकाधिकम्।
रसेन शय्यां स्वयमभ्युपागता कथा जनस्याभिनवा वधूरिव ।।

वस्तुतः बाण ने अपनी वर्णन-प्रतिभा से प्रत्येक वर्णन में रस भर दिया है। उन्होंने कादम्बरी में शृङ्गार रस परिणामतः वासनात्मक नहीं है। महाश्वेता और पुण्डरीक का तथा कादम्बरी एवं महाश्वेता का प्रेम ऐसा ही आदर्श एवं उदात्त प्रेम है। संयोग-शृङ्गार की तीखी अभिव्य´जना का एक उदाहरण पुण्डरीक और महाश्वेता के प्रथम मिलन के वर्णन में देखा जा सकता है -

तदा तस्याप्यभिनवागतं मदनंप्रत्युद्गच्छन्निव रोमोद्गमः प्रादुरभवत् । मत्सकाशमभिप्रस्थितस्य मनसो मार्गमिवोपदिशद्भिः पुरः प्रवृत्तं श्वासैः। वेपथुगृहीता व्रतभङ्गभीतेवाकम्पतकरतलगताक्षमाला । द्वितीयमेव कर्णावसक्तकुसुमम´जरी कपोलतलासंगिनी समदृश्यत स्वेदसलिसीकरजालिका।

विप्रलम्भ की अभिव्य´जना पुण्डरीक और कादम्बरी की वियोगावस्था के वर्णन में द्रष्टव्य है। महाश्वेता और कादम्बरी का विलाप इस कथा को करुण रस से आप्लावित कर देते हैं। बाण की रसाभिव्यक्ति पाठक को कथा में इस प्रकार विभोर कर देती है कि उत्सुकता और रोचकता आदि से अन्त तक कम नहीं होती। बाण की रसाभिव्यक्ति की दक्षता का ही यह परिचायक है कि पाठक पात्रों के साथ दुःख में दुःखी और आनन्द में आनन्दित अनुभव करता है। कादम्बरी के रस और भावपक्ष को लेकर विद्वज्जन इतने अधिक प्रभावित रहे हैं कि ये सूक्तियाँ सटीक ही हैं -

कादम्बरीरसज्ञानामाहारोपि न रोचते।

कादम्बरीरसभरेण समस्त एव मत्तो न किंचिदपि चेतयते जनोऽयम्।

अभ्यास प्रश्न 1 -

1.निम्न में से एक बाणभट्ट की रचना है

क. कुमारसम्भव ख. हर्षचरितम्
ग. किरातार्जुनीयम् घ. शाकुन्तलम्

2. बाण का समय है

क. सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध
ख. सातवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध
ग. छठी शताब्दी
घ. आठवीं शताब्दी

रिक्त स्थन की पूर्ति कीजिए

3. हर्षचरित एक .... है।
4. स्फुरत्कलालाप .... कोमला।

सत्य असत्य का चयन करें

5. महाश्वेता गन्धर्वराज हंस तथा गौरी की पुत्री है ( )

6. वैशम्पायन अच्छोदसरोवर से स्नान करके लौटना चाहता था ( )

बाण की गद्यशैली

बाण से पूर्व सुबन्धु ने दुरूह श्लिष्ट पदावली से युक्त अलंकृत गद्यशैली का प्रयोग किया था। दण्डी की शैली में सरलता थी। बाण ने इन दोनों प्रकार की शैलियों का अपूर्व सन्तुलन प्रस्तुत किया और वर्ण्य विषय के अनुरूप पदावली का प्रयोग करते हुए गद्य के परिनिष्ठित स्वरूप को उपस्थापित किया। बाण की गद्यशैली का आदर्श वही है जिसे उन्होंने स्वयं अपने शब्दों में दुर्लभ कहा है -

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम् ।।

अर्थात् नया अर्थ, सुन्दर स्वभावोक्ति, श्लेष अलंकार, रस तथा अक्षरों की दृढबन्धता - ये सभी एक साथ दुर्लभ हैं। शब्दचयन की दृष्टि से बाण की गद्यशैली को पाऽचाली रीति माना गया है। इस रीति में अर्थ के अनुरूप शब्दों की योजना होती है। सुतरा, बाण एक कलावादी कवि हैं और कला उनके वश में है। वे शृङ्गार में कोमल एवं सरस शब्दों का और वीभत्स आदि के वर्ण में कठोर वर्णो का प्रयोग करते हैं। दीर्घ समस्त पदों का प्रयोग गद्य में ओजोगुण उत्पन्न करता है और उसे ही गद्य का जीवन कहा गया है। बाण ने अपने गद्य में समासों के अवसरानुकूल प्रयोग का असाधारण उदाहरण प्रस्तुत किया है। शुकनासोपदेश के निम्नलिखित उदाहरण उनकी शैली की विविधता को स्पष्ट करते हैं कि किस प्रकार कहीं दीर्घसमासों वाली भाषा का तो कहीं अत्यन्त सरल वाक्यों का प्रयोग करने में वे सिद्धहस्त हैं।

कष्टमनऽजनवर्तिसाध्यमपरमैश्वर्यतिमिरान्धत्वम् । अशिशिरोपचारहार्योऽतितीव्रो दर्पदाहज्वरोष्मा । सततममूलमन्त्रगम्यो विषमो विषयविषास्वादमोहः। नित्यमस्नानशौचवध्यो बलवान् रागमलावलेपः । अजस्रमक्षपावसानप्रबोधा घोरा च राज्यसुखसंनिपातनिद्रा भवतीति विस्तरेणाभिधीयसे।

बाण की समास रहित शैली का एक उदाहरण यह है -

न परिचयं रक्षति, नाभिजनमीक्षते, न रूपामालोकयते । न कुलक्रमानुवर्तते, न शीलं पश्यति, न वैदग्ध्यं गणयति, न श्रुतमाकर्णयति, न धर्ममनुरुध्यते, न त्यागमाद्रियते, न विशेषज्ञतां विचारयति, नाचारं पालयति, न सत्यमनुबुध्यते।

जहाँ भी इस प्रकार के उपदेश के प्रसंग हैं अथवा प्रेम या शोक आदि भावनाओं के अवसर हैं, वहाँ बाण की शैली प्रायः समासहीन या अल्प समास वाली है।

अलंकार - प्रयोग

बाण की शैली का सौन्दर्य उनके अलंकारों के प्रयोग पर आधारित है। इस शैली का आकर्षण श्लिष्ट उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं में निहित है। इससे वर्णन में सजीवता आ गयी है। उपमा, दीपक, श्लेष, स्वभावोक्ति, विरोधाभास, रूपक एवं परिसंख्या उनके प्रमुख अलंकार हैं। अपने अलंकार-प्रयोग की ओर उन्होंने स्वयं ही संकेत किया है।

हरन्ति कं नोज्जवलदीपकोपमैर्नवैपदार्थैरुपपादिता कथाः ।
निरतन्तरश्लेषघनाः सुजातयो महास्रजश्चम्पककुड्मलैरिव ।।

इनकी उपमाएँ प्रायः श्लिष्ट हैं और विशेषण की शाब्दिक समानता पर आधारित हैं। यथा -

अप्रत्ययबहुला च दिवसान्तकमलमिव समुपचितमूलदण्डकोश मण्डलमपि मु ́चति भूभुजम्, लतेव विटपकानध्यारोहति । गङ्गेव वसुजनन्यपि तरङ्गबुद्बुद्च ́चला, दिवसकरगतिरिव प्रकटितविविधसंक्रान्तिः पातालगुहेव तमोबहुला हिडिम्बेव भीमसाहसैकहार्यहृदया, प्राविडिवाचिरद्युतिकारिणी, दुष्टपिशाचीव दर्शितानेकपुरुषोच्छ्राया स्वल्पस्वत्त्वमुन्मत्तीकरोति ।

इनके विरोधाभास का एक उदाहरण इस प्रकार है -

सततमूष्माणमुपजनयन्त्यपि जाड्यमुपजनयति । उन्नतिमादधानापि नीचस्वभावतामाविष्करोति । तोयराशिसंभवापि तृष्णां संवर्धयति । ईश्वरतां दधानाप्यशितप्रकृतित्वमातनोति । बलोपचयमाहरन्तयपि लघिमानमापादयति ।

उत्प्रेक्षालंकार का एक उदाहरण इस प्रकार द्रष्टव्य है -

अभिषेकसमय एव चैतेषां मङ्गलकलशजलैरिव प्रक्षाल्पते दाक्षिण्यम्, अग्निकार्यधूमेनेव मलिनीक्रियते हृदयम्, पुरोहितकुशाग्रसम्मार्जनीभिरिवापह्रियते क्षान्तिः, उष्णीषपट्टबन्धेनेवाच्छाद्यते जरागमनस्मरणम्, आतपत्रमण्डलेनेवापसार्यते परलोकदर्शनम् ।

बाण द्वारा प्रयुक्त अनुप्रासालंकार उनकी शैली में एक मनोरम नादसौन्दर्य उत्पन्न करते हैं । शुकनासोपदेश से कुछ उदाहरण ये हैं -

अप्रदीपप्रभापनेयम् । सततममूलमन्त्रगम्यो विषमो विषयविषास्वादमोहः । इन्द्रियहरिणहारिणी । अखिलमलप्रक्षालनक्षममजलं स्नानम् सुभटखड्गमण्डलोत्पलविभ्रमभ्रमरी । गजघटितघनघटा । मूलदण्डकोश मण्डलम् । धनलवलाभावलेप-।

अपनी विशिष्टि शैली के कारण निश्चय ही बाण सर्वश्रेष्ठ गद्यकवि हैं । उन्होंने बाद के अनेक गद्यकवियों को प्रभावित किया है । संस्कृत के विद्वानों में बाण की शैली की प्रशंसा में अनेक सूक्तियाँ प्रचलित हैं ।

बाण की प्रशस्ति में प्रचलित सूक्तियाँ

जाता शिखण्डिनी प्राग्यथा शिखण्डी तथावगच्छामि ।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूव ह ॥ - **गोवर्धनाचार्य ।**

रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति ।
सा किं तरुणी नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य । - **धर्मदास ।**

श्लेषे केचन शब्दगुम्फविषये केचिद्रसे चापरे
ऽलंकारे कतिचित्सदर्थविषये चान्ये कथावर्णने ।
आः सर्वत्र गभीरधीरकविताविन्ध्याटवीचातुरी

सञ्चारी कविकुम्भिकुम्भभिदुरो बाणस्तु पञ्चाननः ।। **चन्द्रदेव ।**

केवलोऽपि स्फुरन्बाणः करोति विमदान् क्वीन् ।

किं पुनः क्लृप्तसन्धानपुलिन्दकृतसन्निधिः ।। **- धनपाल**

हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः ।

भवेत् कवि-कुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम् ।। -**त्रिलोचन भट्ट**

सहर्षचरितारम्भाद्भुतकादम्बरीकथा ।

बाणस्य वाण्यनार्येव स्वच्छन्दं भ्रमति क्षितौ ।- **राजशेखर**

बाणः कवीनामिह चक्रवर्ती । - **सोड्ढल**

शुकनासोपदेश - संक्षेप

राजा तारापीड का पुत्र राजकुमार चन्द्रापीड गुरुकुल में निवास और अध्ययन समाप्त कर अपने माता-पिता के पास लौटा आता है। कुछ दिन बीतने पर राजा तारापीड उसका यौवराज्याभिषेक करने का निश्चय करते हैं। राजा तारापीड के सुयोग्य और विद्वान प्रधानामात्य थे शुकनास। यौवराज्याभिषेक की तिथि निर्धारित हो जाने पर एक दिन राजकुमार चन्द्रापीड शुकनास से मिलने जाता है। शुकनास चन्द्रापीड को राजलक्ष्मी की चंचलता और उसके अनेक दोषों का कारण बताते हुए एवं युवावस्था के विकारों का उल्लेख करते हुए चन्द्रापीड को सावधान रहकर आत्मनियन्त्रण एवं सतर्कता बरतने का उपदेश देते हैं, जो संक्षेप इस प्रकार है -

यौवन के अविवेक रूपी अन्धकार का प्राबल्य तथा लक्ष्मी अर्थात् ऐश्वर्य प्राप्ति से उत्पन्न विकार - नयी युवावस्था स्वभावतः प्रबल अविवेक रूपी अज्ञान को उत्पन्न करती है, जो सूर्य की किरणों से दूर नहीं हो पाता, रत्नों के प्रकाश से कटता नहीं और प्रदीपों की ज्योति से भगाया नहीं जा सकता। लक्ष्मी की प्राप्ति से मनुष्य में जो अहंकार उत्पन्न हो जाता है वह ऐसा नशा है जो उतरता नहीं। दर्प के दाह का ज्वर शीतल पदार्थों के उपचार से दूर होने वाला नहीं होता। विषयभोगों की लालसा विषम विष के आस्वादन के समान ऐसी बेहोशी ला देती है जो टूटती नहीं। विषयभोगों का आकर्षण ऐसी गन्दगी का लेप लगा देता है जो स्नान या धाने से जाता नहीं। जन्म से ही ऐश्वर्य पा लेना, नयी युवावस्था, अद्वितीय सुन्दर रूप और सामान्य मनुष्यों से अधिक शारीरिक बल से युक्त होना - इनमें प्रत्येक अविनय का घर है और जहाँ ये सब मिलकर विद्यमान हों, वहाँ तो कुछ कहना ही नहीं। यौवन के आरम्भ में शास्त्र ज्ञान से निर्मल हुई बुद्धि भी कलुषित हो जाती है। दृष्टि में कामुकता बनी रहती है। विषयोपभोग की मृगतृष्णा पुरुष को उनके पीछे दौड़ाती रहती है। एक बार जब मन में विकार उत्पन्न हो जाता है तो वे ही विषयसुख और मधुर प्रतीत होने लगते हैं और परिणाम यह होता है कि पुरुष भटक कर नष्ट हो जाता है।

गुरुपदेश का महत्व

जिसके मन में विकार नहीं समाया हुआ है, उसी की बुद्धि में गुरुजनों के उपदेश प्रवेश करते हैं। इसके विपरीत जो स्वभावतः दुष्ट है उसके लिए तो गुरुजनों के वचन कानों में शूल जैसे कष्टदायी

प्रतीत होते हैं। गुरुपदेश मन के अन्धकार को दूर करता है और बुद्धि का विकास कर वृद्धावस्था जैसी समझ उत्पन्न कर देता है। कोई उच्च कुल में उत्पन्न हो इतने मात्र से ही उसमें अविनय की सम्भावना समाप्त नहीं होती। गुरुपदेश एक गम्भीरता ला देता है, एक चमक उत्पन्न कर देता है। विशेषतः राजाओं के लिए तो इसका महत्त्व और अधिक है। उनके लिए हितकारी परामर्श देने वालों का अभाव होता है। जनसमाज तो उनके आदेश का भयवश अनुगमन ही करता है। दर्प के कारण राजाओं के कान सूज कर बहरे हो जाते हैं। वे सुनते हुए भी हाथी के समान आँखें बन्द कर उपेक्षा करते हैं। अहंकार के दाहज्वर की मूर्च्छा इन **राजाओं पर छायी रहती है।**

लक्ष्मी का प्रवञ्चनामय स्वभाव

लक्ष्मी में वक्रता, चंचलता, नशा, मूर्च्छा उत्पन्न करने की शक्ति और कठोरता सहज रूप में विद्यमान होती है। ऐसा कोई नहीं है जिसे इसने धोखा न दिया हो। मिल जाने पर भी लक्ष्मी की रक्षा बड़े कष्ट से होती है। लक्ष्मी किसके पास पहुँच जाय, इसका ठिकाना नहीं। यह परिचय, कुलपरम्परा, शील, विदग्धता, शास्त्रज्ञान, धर्म, त्याग, विशेषज्ञता, आचार और सत्यशीलता का विचार नहीं करती। देखते-देखते गायब हो जाती है। क्रूर और साहस के कर्म करने वालों के अधीन हो जाती है। शक्तिशाली राजा को भी क्षण भर में छोड़ देती है। सरस्वती के भक्तों से तो ईर्ष्या ही रखती है। गुणवान, उदार, सज्जन, कुलीन, वीर, दानी, विनम्र और मरस्वी पुरुष के समीप नहीं जाती। यह पुरुष में तृष्णा को बढ़ाने, क्षुद्रता उत्पन्न करने का ही कार्य करती है। यह इन्द्रियों को फाँसती है, मनुष्य को कुकर्मों की ओर प्रेरित करती है और उत्तम चरित्र को कलंकित कर देती है, मनुष्य में क्रोध उत्पन्न करती है और सदाचार एवं सद्गुणों को समाप्त कर देती है। यह धूर्तता सिखाती है और कामवासना को बढ़ाने के साथ धर्मबुद्धि का सम्पूर्ण नाश कर देती है। जो राजा किसी प्रकार इसकी कृपा पा लेते हैं, वे सभी अवगुणों, दुर्गुणों, अधर्म, अहंकार, अक्षमा और अदूरदर्शिता से ग्रस्त हो जाते हैं। कुछ दूसरे राजा पागल जैसे होकर विषयभोगों की ओर दौड़ते हैं और मानो असंख्य इन्द्रियों द्वारा अधिक से अधिक भोगों का सुख पाना चाहते हैं। वे सब कुछ स्वर्णमय देखने लगते हैं। ऐसे राज अत्याचारी होकर निरन्तर पाप करते जाते हैं, सैकड़ों व्यसनों में पड़कर अधोगति को प्राप्त होते हैं। ऐसे राजाओं की चापलूसी में लगे धूर्त उनके दोषों को गुण के रूप में बखान कर उन्हें ऐसे भ्रम में डाल देते हैं जैसे वे देवता के ही अवतार हों और वे राजा भी ऐसे भ्रम में देवताओं की तरह आचरण करने लगते हैं तथा उपहास के पात्र बनते हैं। गर्व से चूर ये राजा किसी को दर्शन देना भी कृपा करना दृष्टिपात करना, उपकार, वार्तालाप कर लेना, धन का दान देना तथा किसी को आज्ञा देना वरदान देना समझते हैं। वे अहंकार से देवों औश्र गुरुजनों का सम्मान नहीं करते, किसी की बात नहीं सुनते। वे धूर्तों और चापलूसों को ही अपने समीप रखते हैं, उन्हीं को लाभ पहुँचाते हैं और उन्हीं को प्रमाण मान लेते हैं, जो सभी कार्यों को छोड़कर उनकी स्तुति में लगा रहता है।

चन्द्रापीड को कर्त्तव्य हेतु उद्बोधन

अपने उपदेश को समाप्त करते हुए शुकनास ने चन्द्रापीड को इस प्रकार आचरण एवं व्यवहार

करने को कहा जिससे मित्र, सज्जन, गुरुजन, विद्वानों को असन्तोष या शोक न हो, जिससे धूर्त, विट, लम्पट, भ्रष्ट स्त्रियाँ और धोखेबाज लोग अपयश फैलाने, धन की लूट - खसोट करने, व´चना और फँसाने के कार्यों में सफल न हों। सबसे पहले दिग्विजय यात्राओं से पहले पिता द्वारा जीते गये भी राजाओं को परास्त कर अपने प्रताप को सुदृढ़ कीजिए, जिससे आपकी आज्ञा का कोई उल्लंघन न कर सके।

शुकनास के उपदेश को सुनकर चन्द्रापीड ने अपूर्व निर्मलता और प्रसन्नता का अनुभव किया और कुछ समय शुकनास के पास रुकने के बाद अपने भवन को लौट आया।

शुकनासोपदेश के अन्तर्गत सूक्तियाँ

(यद्यपि शुकनासोपदेश अधिकांशतः सूक्ति के समान है, तथापि निम्नलिखित सूक्तियाँ विशेष्ज्ञतः उल्लेखनीय हैं)

1- निसर्गत एवं अतिगहनं तमो यौवनप्रभवम्।

2- अपरिणामोपशमो दारुणो लक्ष्मीमदः।

3- अन´जनवर्तिसाध्यमपरमैश्वर्यतिमिरान्धत्वम्।

4- अशिशिरोपचारहार्योऽतितीव्रो दर्पदाहज्वरोष्मा।

5- यौवनारम्भे च प्रायः शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धिः।

6- अनुज्झितधवलतापि सरागैव भवित यूनां दृष्टिः।

7- अपहरति च वात्येव शुष्कपत्रं समुद्भूतरजोभ्रान्तिरतिदूरमात्मेच्छया यौवनसमये पुरुषं प्रकृतिः।

8-गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिमरूपत्वममानुषशक्तित्वं चेति महतीयं खल्वनर्थपरम्परा सर्वा।

9- इन्द्रियहरिणहारिणी सततदुरन्तेयमुपभोगमृगतृष्णिका।

10- नाशयति च दिङ्मोह इवोन्मार्गप्रवर्त्तकःपुरुषमत्यासङ्गो विषयेषु।

11- अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकरगभस्तयो विशन्ति सुखेनोपदेशगुणाः।

12- गुरुवचनममलमपि सलिलमिवमहदुपजनयति श्रवणस्थितं शूलमभव्यस्य।

13- कुसुमशरशरप्रहारजर्जरिते हि हृदि जलमिवगलत्युपदिष्टम्।

14- अकारणं च भवित दुष्प्रकृतेरन्वयः श्रुतं चाविनयस्य।

15- गुरुपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमलप्रक्षालनक्षमजलं स्नानम।

16- प्रतिशब्दक इव राजवचनमनुगच्छति जनो भयात्।

17- अहंकारदाहज्वरमूर्च्छान्धकारिता विह्वलाहि राजप्रकृतिः।

18- अलीकाभिमानोन्मादकारिणी धनानि।

19- राज्यविषविकारतन्दाप्रदा राजलक्ष्मीः।

20- (लक्ष्मीः) सरस्वतीपरिगृहीतमीर्ष्ययेव नालिङ्गति।

21- (लक्ष्मीः) जनं गुणवन्तमपवित्रमिव न स्पृशति।

22- नहि तं पश्यामि यो ह्यपरिचितयानया न निर्भरमुपगूढः यो वा न विप्रलब्धः।

23- तरलहृदयमप्रतिबुद्धं च मदयन्ति धनानि।

24-विद्वांसमपि सचेतनमपि महासत्त्वमप्यभिजातमपि धीरमपि प्रयत्नवन्तमपि पुरुषमियं दुर्विनीता

खलीकरोति लक्ष्मीः।

25 - आरूढप्रतापो राजा त्रैलोक्यदर्शीव सिद्धादेशो भवति।

अभ्यास प्रश्न 2

1.बाण किस रीति के कवि हैं

क. वैदर्भी ख. पांचाली ग. गौड़ी घ. कुछ नहीं

2. **वाणी बाणो बभूव** किसने कहा है

क. बाणभट्ट ख. दण्डी ग. चन्द्रदेव घ. गोवर्धनाचार्य

रिक्त स्थान की पूर्ति करें

3. न .... रक्षति।

4. बाण .... चक्रवर्ती।

सत्य और असत्य का ज्ञान करें

5.लक्ष्मी के प्रवंचनामय स्वभाव का वर्णन कादम्बरी में किया गया है ( )

6.' बाणस्तु पंचानन :' धनपाल नें कहा है ( )

अति लघु- उत्तरीय प्रश्न

1- सुबन्धु की अलंकृत गद्यशैली के श्रेष्ठ कलाकार कौन है ?

2- बाणभट्ट ने अपने पूर्वजों तथा स्वयं अपना परिचय किसके माध्यम से दिया है ?

3- बाणभट्ट नें कादम्बरी के आरम्भ के पद्यों में किसका वर्णन किया है ?

4- महाकवि बाण की कितनी कृतियाँ प्रसिद्ध हैं ?

5- महाकवि बाणभट्ट की कौन सी तीन कृतियाँ हैं ?

6- बाणभट्ट के पिता का नाम क्या था ?

7- बाणभट्ट की माता का नाम क्या था ?

8- किस अवस्था में बाण की माता का निधन हो गया ?

9 - बाणभट्ट कितने वर्ष की अवस्था में पितृविहीन हो गये ?

10 - युवावस्था में बाण किसके बन्धन से मुक्त होकर इधर-उधर घूमने लगे ?

11 - बाणभट्ट ने अपने मित्रों की लम्बी सूची किसमें दी है ?

12 - बाणभट्ट किसके समकालीन थे ?

13 - हर्षवर्धन ने कबसे कब तक शासन किया था ?

14 - बाण की गद्य रचना हर्षचरितम् क्या है ?

15 - बाणभट्ट की प्रख्यात गद्य रचना कादम्बरी क्या है ?

1. 4 सारांश

इस इकाई इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि लौकिक संस्कृत गद्य का सर्वप्रथम दर्शन हमें बाण की रचनाओं में मिलता है। निश्चय ही ये गद्य-काव्य के चरमोत्कर्ष के प्रतीक हैं। शुकनास ने चन्द्रापीड को इस प्रकार आचरण एवं व्यवहार करने को कहा जिससे मित्र, सज्जन, गुरुजन,

विद्वानों को असन्तोष या शोक न हो, जिससे धूर्त, विट, लम्पट, भ्रष्ट स्त्रियाँ और धोखेबाज लोग अपयश फैलाने, धन की लूट- खसोट करने, वंचना और फँसाने के कार्यों में सफल न हों। सबसे पहले दिग्विजय यात्राओं से पहले पिता द्वारा जीते गये भी राजाओं को परास्त कर अपने प्रताप को सुदृढ़ कीजिए, जिससे आपकी आज्ञा का कोई उल्लंघन न कर सके। यौवन के अविवेक रूपी अन्धकार का प्राबल्य तथा लक्ष्मी अर्थात् ऐश्वर्य प्राप्ति से उत्पन्न विकार - नयी युवावस्था स्वभावतः प्रबल अविवेक रूपी अज्ञान को उत्पन्न करती है, जो सूर्य की किरणों से दूर नहीं हो पाता, रत्नों के प्रकाश से कटता नहीं और प्रदीपों की ज्योति से भगाया नहीं जा सकता। लक्ष्मी की प्राप्ति से मनुष्य में जो अहंकार उत्पन्न हो जाता है वह ऐसा नशा है जो उतरता नहीं। दर्प के दाह का ज्वर शीतल पदार्थों के उपचार से दूर होने वाला नहीं होता। विषयभोगों की लालसा विषम विष के आस्वादन के समान ऐसी बेहोशी ला देती है जो टूटती नहीं। विषयभोगों का आकर्षण ऐसी गन्दगी का लेप लगा देता है जो स्नान या धाने से जाता नहीं। जन्म से ही ऐश्वर्य पा लेना, नयी युवावस्था, अद्वितीय सुन्दर रूप और सामान्य मनुष्यों से अधिक शारीरिक बल से युक्त होना - इनमें प्रत्येक अविनय का घर है और जहाँ ये सब मिलकर विद्यमान हों, वहाँ तो कुछ कहना ही नहीं। यौवन के आरम्भ में शास्त्र ज्ञान से निर्मल हुई बुद्धि भी कलुषित हो जाती है। बाण की शैली का सौन्दर्य उनके अलंकारों के प्रयोग पर आधारित है। इस शैली का आकर्षण श्लिष्ट उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं में निहित है। इससे वर्णन में सजीवता आ गयी है। उपमा, दीपक, श्लेष, स्वभावोक्ति, विरोधाभास, रूपक एवं परिसंख्या उनके प्रमुख अलंकार हैं।

1.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1.

1. ख 2. क 3. आख्यायिका 4. विलास 5. सही 6. गलत

अभ्यास प्रश्न 2.

1. ख 2. घ 3. परिचय 4. कविनामिह 5. सही

6. गलत

अतिलघुत्तरीय के उत्तर

(1) बाणभट्ट (2) कथा के माध्यम से दिया है (3) अपने वंश का वर्णन किया है

(4) तीन कृतियाँ।

(5) हर्षचरित, कादम्बरी, और मुकुटताडितक

(6) चित्रभानु (7) राजदेवी था (8) शैशवावस्था में

(9) चौदह वर्ष की अवस्था में (10) अनुशासन के बन्धन से

(11) हर्षचरित में दी है (12) हर्षवर्धन के समकालीन थे

(13) 606 ई0 से 648 ई0 तक (14) आख्यायिका (15) एक कथा है

1. 6 सदर्भ ग्रन्थ सूची

1- ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
कादम्बरी	बाणभट्ट	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी
2- ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
शिवराजविजय	अम्बिकादत्तव्यास	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी
3- संस्कृत साहित्य का इतिहास .	बलदेव उपाध्याय	प्रकाशक,
	शारदा निकेतन वी,	कस्तूरवानगर सिगरा वाराणसी

1.7 उपयोगी पुस्तकें

1.ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
शिवराजविजय	अम्बिकादत्तव्यास	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

1.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. बाणभट्ट का विस्तृत परिचय दीजिये।
2. बाण की गद्य शैली की विवेचना कीजिए।
3. शुकनासोपदेश का परिचय दीजिए।

इकाई . 2 गद्य भाग - एवं समतिक्रामत्सु .... मेदादोषं गुरुकरणम् तक व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना

संस्कृत गद्य साहित्य शास्त्र से सम्बन्धित खण्ड तीन की यह दूसरी इकाई है। इसके पूर्व की इकाई में आपनें बाणभट्ट की कादम्बरी आदि का परिचय प्राप्त किया। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि चन्द्रापीड कौन था ? राजा ने चन्द्रापीड को युवराज के पद पर अभिषेक करने की इच्छा से द्वारपालों को सामग्रियों का समूह एकत्र करने के लिए आदेश दिया। उस चन्द्रापीड को , जिसका युवराज पद पर अभिषेक का समय निकट था, कभी मिलने के लिए आने पर विनय से परिपूर्ण होने पर भी उसे और अधिक विनम्र बनाने की इच्छा से शुकनास ने विस्तार से उपदेश दिया।

अन्धकार अत्यन्त गहन होता है, जो सूर्य द्वारा दूर नहीं किया जा सकता है, रत्नों के प्रकाश से नष्ट नहीं किया जा सकता, दीपक की ज्योति से हटाया नहीं जा सकता। मदपान का नशा तो परिणाम अर्थात् पचकर उतर जाता है किन्तु धनसम्पत्ति से उत्पन्न नशा परिणाम अर्थात् वृद्धावस्था होने पर भी नहीं उतरता आदि - आदि ।

अत: इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप इसमें से प्राप्त शिक्षाओं को बता सकेंगे तथा शुकनास द्वारा दिये गये उपदेशों का महत्व समझा सकेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इनके महत्त्व पूर्ण बातों का अध्ययन करेंगे।

- शुकनास ने चन्द्रापीड को उपदेश दिया ,इसके विषय में समझा सकेंगे।
- शुकनाशका परिचय विस्तार पूर्वक दे सकेंगे।
- अन्धकार अत्यन्त गहन होता है, इसकी व्याख्या कर सकेंगे।
- चन्द्रपीड आदि का परिचय दे सकेंगे।
- बाण की गद्यशैली की विशेषताओं को बता सकेंगे।

2.3 गद्यभाग - एवं समतिक्रामत्सु से मेदोदोषं गुरुकरणम्

एवं समतिक्रामत्सु केषुचिद् दिवसेषु, राजा चन्द्रापीडस्य यौवराज्याभिषेकं चिकीर्षु: प्रतीहारानुपकरण - सम्भारसंग्रहार्थमादिदेश । समुपस्थितयौवराज्याभिषेकं च तं कदाचिद् दर्शनार्थमागतमारूढ़विनयमपि विनीततरमिच्छुकनासः सविस्तरमुवाचतात चन्द्रापीड ! विदितवेदितव्यस्याधीतसर्व-शास्त्रस्य ते नाल्पमप्युपदेष्टव्यमस्ति। केवलं च निसर्गतएवाभानु - भेद्यमरत्नालोकोच्छेद्यमप्रदीप-प्रभापनेयमति-गहनं तमो यौवनप्रभवम्। अपरिणामोपशमो दारुणो लक्ष्मीमदः।

शब्दार्थ - एवम् = इस प्रकार से, जैसा पहले वर्णन किया जा चुका है उस प्रकार से। समतिक्रामत्सु केषुचिद् दिवसेषु = कुछ दिनों के बीतते रहने पर। सम्, अति, क्रम्,शतृ।

समतिक्रामत् से सप्तमी बहुवचन । ' यस्य च भावेन भावलक्षणम् ' नियम से सप्तमी विभक्ति हुई है । राजा = राजा तारापीड ने । यहाँ राजा से कादम्बरी कथा के नायक चन्द्रापीड के पिता तारापीड से तात्पर्य है । राज्कनिन् प्रत्यय । चन्द्रापीडस्य यौवराज्याभिषेकं चिकीर्षुः = अपने पुत्र चन्द्रापीड का युवराज पद पर अभिषेक करने की इच्छा से युक्त। राजा या युवराज पद पर प्रतिष्ठित करने के लिए पवित्र नदियों और तीर्थों के जल से स्नान कराने की क्रिया को अभिषेक कहा गया है । चिकीर्षुः = करने की इच्छा से युक्त, कृ + सन् + उ प्रत्यय । प्रतीहारान् = द्वारपालों को । द्वार पर रहने वाले सेवक या चौकीदार को प्रतीहार कहा गया है ' द्वारि द्वास्थे प्रतीहारः'- अमरकोश । उपकरण - सम्भार - संग्रहार्थम् = सामग्रियों का समूह एकत्र करने के लिए, उपक्रियते अनेन इति उपकरणम्, तेषां सम्भारः उपकरणसम्भारः, तस्मै इति उपकरण - सम्भारसंग्रहार्थम् । अर्थ पद के साथ चतुर्थी के अर्थ में नित्यसमास । उपकरण - उप + कृ + ल्युट् करण अर्थ में । सम्भार- सम् + भृ + घञ् भाव में । आदिदेश = आदेश दिया । आ + दिश् + लिट् लकार प्रथम पु0 एक व0 । समुपस्थितयौवराज्याभिषेकं च तम् = जिसके युवराज पद पर अभिषेक का समय निकट आ गया था ऐसे उसको । उसको से यहाँ चन्द्रापीड से अर्थ है । उस चन्द्रापीड को, समुपस्थितिः यौवराज्याभिषेकः यस्य तम् । सम् + उप + स्था + क्त । कदाचित् दर्शनार्थम् आगतम् = कभी दर्शन के लिए आये हुए उसको । दर्शनार्थम् में अर्थ पद के साथ चतुर्थी में नित्यसमास हुआ । दृश् + ल्युट् । आरूढविनयमपि = विनय से युक्त होने पर भी, आरूढःविनयः यम् इति आरूढविनयः तम् । आ + रुह् + क्त = आरूढ । विनीततरम् इच्छन् = और अधिक विनम्र बनाने की इच्छा करते हुए । शुकनासः सविस्तरम् उवाच = शुकनास ने विस्तार से कहा । विस्तरेण सह वर्तमानः इति यथा स्यात् तथा । विनीततर - वि + नी + तरप् । इच्छन् - इष् + शतृ । विस्तरः - वि + सतृ + अप् । उवाच - ब्रू-वच् लिट्लकार प्रथम पु 0 एकवचन । तात = हे प्रिय । स्नेहसूचक अव्यय । = विदितवेदितव्यस्य = सभी जानने योग्य विषयों को जान लेने वाले विदितं वेदितव्यं येन सः, तस्य । विद् + क्त कर्म अर्थ में । वेदितव्य विद् + तव्य । अधीतसर्वशास्त्रस्य = सभी शास्त्रों का अध्ययन कर लेने वाले, अधीतानि सर्वाणि शास्त्राणि येन सः अधीतसर्वशास्त्रः तस्य । अधि + इ + क्त । ते = तुम्हारे लिए, आपके लिए । न अल्पम् अपि उपदेष्टव्यम् अस्ति = कुछ भी उपदेश देने योग्य विषय नहीं है । केवलं च = केवल यही है । इतना ही कहना है । निसर्गतः एव = स्वभाव से ही । नि+ सृज् + घञ् । अभानुभेद्यम् = सूर्य द्वारा दूर न किया जा सकने वाला । भेत्तुं योग्यम् इति भेद्यम् । भानुना भेद्यम्, भानुभेद्यम् । न भानुभेद्यम् इति अभानुभेद्यम् - नञ् तत्पुरुष । भिद् + ण्यत् । यहाँ अज्ञानरूपी अन्धकार के विषय में कहा गया है । सूर्य उस अन्धकार को दूर नहीं कर सकता । अरत्नालोकोच्छेद्यम् = रत्नों के प्रकाश से भी जो हटाया नहीं जा सकता । रत्नानाम् आलोकः रत्नालोकः। उच्छेत्तुं योग्यम् उच्छेद्यम् । रत्नालोकेन उच्छेद्यम् रत्नालोकोच्छेद्यम् न रत्नालोकोच्छेद्यम् इति अरत्नालोकोच्छेद्यम् । उत् + छिद् + ण्यत् । अप्रदीपप्रभापनेयम् = दीपक की ज्योति से दूर न करने योग्य । प्रदीपयन्ति इति प्रदीपाः तेषां प्रभा प्रदीपप्रभा । अपनेतु योग्यम् अपनेयम् । प्रदीपप्रभया अपनेयम् इति प्रदीपप्रभापनेयम् न प्रदीपप्रभापनेयम् इति अप्रदीपप्रभापनेयम् ।

तत्पुरुष। प्रज्वलित दीपक की प्रभा से रात्रि का अन्धकार दूर हो सकता है, किन्तु युवावस्था में उत्पन्न अज्ञान रूपी अन्धकार नहीं।

अप + नी + यत् = अपनेयम्। अतिगहनु तमः यौवनप्रभवम् = युवावस्था में उत्पन्न अज्ञान रूपी अन्धकार अत्यन्त गहन होता है। अतिशयेन गहनम् अतिगहनम्। यहाँ अन्धकार दूर करने के कारणों के होते हुए भी अन्धकार दूर न होने का वर्णन है, अतः विशेषोक्ति अलंकार है। यहाँ तमः से अज्ञान, दर्प, मोह, गर्व और तमोगुण अभिप्रेत है। अपरिणामोपशमः = परिणामेण यः उपशमः तथाभूतः - पच जाने पर समाप्त हो जाने वाला। आगे आये हुए शब्द लक्ष्मीमदः के विशेषण हैं। लक्ष्मीमदः = लक्ष्मी अर्थात् धन-सम्पत्ति से उत्पन्न मद = नशा या अभिमान। मदपान करने पर उसका नशा पचने के साथ समाप्त हो जाता है, किन्तु धन-सम्पत्ति या राजसत्ता का मद या अभिमान परिणाम में अर्थात् वृद्धावस्था में भी समाप्त नहीं होता। मदपान का नशा उसके पचने पर उतर जाता है, किन्तु धन का नशा नहीं परिणाम का दूसरा अर्थ होगा - वृद्धावस्था। यहाँ अतिशयोक्ति अलंकार है। दारुणः = भीषण। दारयति इति दारुणः। भयावह। दृ+ णिच्+ उनन्।

हिन्दी भावार्थ - इस प्रकार कुछ दिनों के बीतने पर राजा ने चन्द्रापीड का युवराज के पद पर अभिषेक करने की इच्छा से द्वारपालों को सामग्रियों का समूह एकत्र करने के लिए आदेश दिया। उस चन्द्रापीड को, जिसका युवराज पद पर अभिषेक का समय निकट था, कभी मिलने के लिए आने पर विनय से परिपूर्ण होने पर भी उसे और अधिक विनम्र बनानेकी इच्छा से शुकनास ने विस्तार से कहा-

प्रिय चन्द्रापीड ! जानने योग्य सभी विषयों का ज्ञान प्राप्त कर लेने वाले और सभी शास्त्रों का अध्ययन कर चुके आपके लिए उपदेश देने योग्य कुछ भी नहीं है। केवल यही कहना है कि स्वभाव से यौवन में उत्पन्न (अज्ञानरूपी) अन्धकार अत्यन्त गहन होता है, जो सूर्य द्वारा दूर नहीं किया जा सकता है, रत्नों के प्रकाश से नष्ट नहीं किया जा सकता, दीपक की ज्योति से हटाया नहीं जा सकता। (मदपान का नशा तो परिणाम अर्थात् पचकर उतर जाता है किन्तु) धनसम्पत्ति से उत्पन्न नशा परिणाम अर्थात् वृद्धावस्था होने पर भी नहीं उतरता।

कष्टमनञ्जन-वर्ति-साध्यमपरमैश्वर्य-तिमिरान्धत्वम्।
अशिशिरोपचारहार्योऽतितीव्रो दर्प-दाह-ज्वरोष्मा।
सततममूलमन्त्रगम्यो विषमो विषय-विषास्वादमोहः।

शब्दार्थ - कष्टम् = कष्टदायी है, दुःख देने वाला है। अनंजनवर्तिसाध्यम् = अंजन की वर्ति से दूर न किया जाने योग्य। अंजनस्य वर्तिः अंजनवर्तिः, तया साध्यम् अंजनवर्तिसाध्यम्, न अंजनवर्तिसाध्यम् अनंजनवर्तिसाध्यम्। अंजन - अंज् + ल्युट्। अपरम् = कोई दूसरा ही विलक्षण। ऐश्वर्तिमिरान्धत्वम् = ऐश्वर्य से उत्पन्न नेत्ररोग का अन्धापन है। ईश्वरस्य भावः ऐश्वर्यम्, ऐश्वर्यम् एव तिमिरम्ऐश्वर्यतिमिरम्, तेन अन्धत्वम्, ऐश्वर्यतिमिरान्धत्वम्। अन्धस्य भावः अन्धत्वम्। ऐश्वर्य- ई श्वर + ष्यञ्। तिमिर आँखों का एक रोग है। यहाँ ऐश्वर्य से उत्पन्न अन्धकार पर मितिर रोग का आरोप होने से रूपकालंकार है। अशिशिरोपचारहार्यः = चन्दन

आदि शीतलता उत्पन्न करने वाले पदार्थों से दूर न किये जाने योग्य । शिशिरःचासौ उपचारश्यच शिशिरोपचारः, हर्तुयोग्यःहार्यः, शिशिरोपचारेण हार्यः शिशिरोपचारहार्यः न अशिशिरोपचारहार्यः शिशिरोपचारहार्यः । उपचारः - उप+ चर् +घञ् । हार्यः - हृ + ण्यत् अतितीव्र = अत्यधिक तीव्र । अतिशयेन तीव्रः। दर्पदाहज्वरोष्मा = अभिमान रूपी दाहक ज्वर की गर्मी । दाहकारकः ज्वरः दाहज्वरः। तस्य ऊष्मा दर्पदाहज्वरोष्मा । कर्मधारयगर्भित तत्पुरुष । दर्प = दृप्+घञ् । दाह = दह्+घञ् । भाव यह है कि अन्य प्रकार के ज्वरचन्दन आदि शीतल पदार्थों के उपचार से दूर हो सकते हैं, किन्तु धनसम्पत्ति के अभिमानसे उत्पन्न ज्वर या तीव्र गर्मी शान्त नहीं होती । दर्प पर दाहज्वरः का आरोप होने से रूपकालंकार है । सततम् = निरन्तर । अमूलमन्त्रगम्यः = मूल अर्थात् जड़ी- बूटियाँ औश्र मन्त्रों के लिए अगम्य। इनसे दूर न किये जाने योग्य । शम्यः पाठ भी है तब अर्थ होगा शान्त न किये जाने योग्य । मूलानि च मन्त्राश्च मूलमन्त्राः, तैः गम्यः। मूलमन्त्रगम्यः, न मूलमन्त्रगम्यः अमूलमन्त्रगम्यः। विषमः = विकट, कठिन, कुटिल । विषयविषास्वादमोहः = विषयभोग रूपी विष का आस्वादन करने से उत्पन्न मोह या मूर्च्छा । विषयाः एव विषम् विषयविषम्, तस्य आस्वादः विषयविषास्वादः, तस्मात् मोहः विषयविषास्वादमोहः। विषयों पर विष का आरोप होनेसे रूपक अलंकार है । सामान्य विष को खाने से उत्पन्न मूर्च्छा जड़ी - बूटियों और मन्त्रों से झाड़ - फूँक से दू की जा सकती है, किन्तु विषयभोग के सेवन से उत्पन्न मोह या मूर्च्छा इतनी कठिन होती है कि इनसे परे होती है ।

हिन्दी भावार्थ - कष्ट है कि ऐश्वर्य से उत्पन्न कुछ दूसरे ही प्रकार का तिमिर नामक नेत्ररोग का अन्धापन होता है, जो अंजन की वर्तिका से दूर नहीं किया जा सकता । दर्प रूपी दाहकारी ज्वर की गर्मी अति तीव्र होती है, जो शीतल पदार्थों द्वारा उपचार से दूर नहीं होती । विषयभोग रूपी विष के आस्वादन से उत्पन्न मूर्च्छा विषम तथा जड़ी - बूटियों और मन्त्रों की पहुँच से परे होती है ।

नित्यमस्नानशौचवध्यो बलवान् रागमलावलेपः। अजस्रमक्षपावसानप्रबोधा घोरा च राज्यसुख-संनिपात-निद्रा भवतीति विस्तरेणाभिधीयसे ।

गर्भेश्वरत्वमभिनवयौवनत्वमप्रतिमरूपत्वममानुषशक्तित्वं चेति महतीयं खल्वनर्थपरम्परा सर्वा। अविनयानामेकैकमप्येषामायतनम्, किमुत समवायः।

शब्दार्थ - नित्यम् अस्नानशौचवध्यः = सदा ही स्नान और शुद्धि की विधियों से नष्ट करने योग्य नहीं होती । स्नानं च शौचं च स्नानशौचे। ताभ्यां वध्यः स्नानशौचवध्यः, न स्नानशौचवध्यः अस्नानशौचवध्यः। द्वन्द्वगर्भित तत्पुरुष समास । वध्यः वध्यत् । बलवान् - बल+ मतुप । रागमलावलेपः = राग अर्थात् विषयभोग की अभिलाषा रूपी मल - गन्दगी, कीचड़ या मैल का अवलेप । रागः एव मलः रागमलः, तस्य अवलेपः रागमलावलेपः। कर्मधारयगर्भित तत्पुरुष समास । गम्यः - गम् + यत् । आस्वाद - आ+ स्वद् + घञ् । स्नान - स्ना/ल्युट् । अवलेपः - अव + लिप् + घ´! । राग के ऊपर मल का आरोप होने से रूपक अलंकार है । सामान्य गन्दगी या कीचड़ लग जाने पर स्नान या सफाई की अन्य विधि से समाप्त हो जाती है, किन्तु राग रूपी मल इतना गाढ़ा होता है कि नष्ट नहीं होता । अजस्रम् निरन्तर । अक्षपावसानप्रबोधा रात्रि

समाप्त हो जाने पर भी जागने न देने वाली। क्षपयाः अवसानम् क्षपावसानम्, तस्मिन् प्रबोधः क्षपावसानप्रबोधः, न क्षपावसानप्रबोधः यस्यां तथाभूता । घोरा = गहरी । राज्यसुख-सन्निपातनिद्रा = राज्य के सुखों के समूह से उत्पन्न सन्निपात रोग की नींद। राज्यस्य सुखानि राज्यसुखानि तेषां सन्निपातः एव सन्निपातः राज्यसुखसन्निपातः तेन निद्रा, सम्+नि+पत्+घञ् । राज्यसुखसन्निपातनिद्रा । गर्भेश्वरत्वम् = जन्म से ही राजा या धनसम्पन्न होना । ईश्वरस्य भावः ईश्वरत्वम् गर्भात् ईश्वरत्वम गर्भेश्वरत्वम् । अभिनवयौवनत्वम = नयी युवावस्था होना । यूनः भावः यौवनम्, अभिनवं यौवनं यस्य सः, अभिनवं च तत् यौवनम् अभिनवयौवनं, तस्य भावः। अप्रतिमरूपत्वम् = अद्वितीय रूप से सम्पन्न होना। न प्रतिमा यस्य तथाभूतम् अप्रतिमम्, अप्रतिमम् रूपं यस्य सः अप्रतिमरूपः, तस्य भावः अप्रतिमरूपत्वम् । अमानुषशक्तित्वम् = मनुष्य से बढ़कर शक्ति से सम्पन्न होना । मनुष्यस्य इयम् मानुषी । न मानुषी इति अमानुषी । अमानुषी शक्तिः यस्य सः तथाभूतः अमानुषशक्तिः तस्य भावः। अनर्थपरम्परा = अनर्थों की कड़ी या शंखला है । अनर्थानां परम्परा अनर्थराम्परा । एषाम् =इन चारों में । एकैकम् - प्रत्येक । अवनयानाम् - अविनय के कार्यो के, उद्दण्डता के आयतनम् = घर हैं कारण है । किमुत समवाय = फिर इनका समवाय होने पर, इन सबके एक व्यक्ति में एकत्र होने पर कहना ही क्या ? यहाँ हेतु अलंकार है ।

हिन्दी भावार्थ- सुख भोग की अभिलाषा रूपी मल का लेप इतना तगड़ा होता है कि स्नान और शुद्धि के उपायों से समाप्त नहीं होता । राज्यसुख रूपी सन्निपात ज्वर की निद्रा निरन्तर रात्रि के समाप्त होने पर भी न टूटने वाली और घोर होती है । इस कारण आपसे विस्तार से कहा जा रहा है। जन्म से ही राज या धनसम्पन्न होना, नयी युवावस्था, अद्वितीय रूपवान् होना और मनुष्य से बढ़कर शक्ति से युक्त होना - यह अनर्थ की बड़ी शृङ्खला है । इनमें एक-एक उद्दण्डता के घर हैं, इनके समूह की तो बात ही क्या ।

यौवनारम्भे च प्रायः शास्त्रजलप्रक्षालननिर्मलापि कालुष्यमुपयाति बुद्धिः। अनुज्झितधवलतापि सरागैव भवति यूनां दृष्टिः। अपहरति च वात्येव शुष्कपत्रं समुद्भूतरजोभ्रान्तिरतिदूरमात्मेच्छया यौवनसमये पुरुषं प्रकृतिः।

शब्दार्थ - मित्रलाभ में कहा गया है - यौवनं धनसम्पत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता । एकैकमप्यनर्थाय किमु यत्र चतुष्टयम् ।। यौवनारम्भे = यौवन के आरम्भ में, नयी युवावस्था में । यौवनस्य आरम्भःयौवनारम्भः तस्मिन् । आरम्भः - आ + रम्भ घञ् । प्रायः = बहुधा, अधिकांशतः। शास्त्रजल - प्रक्षालननिर्मला अपि = शास्त्र रूपी जल से धुलकर अज्ञानरूपी मल से मु होने पर भी । शास्त्रम् एव जलम् शास्त्रजलम् । तेन प्रक्षालनम् शास्त्रजलप्रक्षालनम् । प्रक्षालन - प्र + क्षाल्ः ल्युट् । निर्गतः मलः यस्याः सा निर्मला, शास्त्रजलेन प्रक्षालनेन निर्मला तथाभूता (बुद्धि का विशेषण) बुध् + क्तिन् । बुद्धिः कालुष्यम् उपयाति = बुद्धि कलुषता को प्राप्त होती है । मलिन हो जाती है, विवेकहीन हो जाती है । कलुषायाः भावः कालुष्यम् । कालुष्य शब्दपर श्लेष है । इसका बुद्धि के पक्ष में अर्थ हे अववेकरूपी कलुषता । शास्त्र पर जल का आरोप होने से

रूपकालंकार है । कलुष् + तल् + टाप् = कलुषता । शास्त्र पर जल का आरोप होने से रूपकालंकार है। कलुष + ष्यञ् । अनुज्झितधवलता अपि = धवलता या सफेदी को न छोड़ने पर भी। न उज्झिता अनुज्झिता । धवलायाः भावः धवलता, अनुज्झिता धवलता यया सा । बहुब्रीहि । (दृष्टिः का विशेषण) । यूनां दृष्टिः = युवकों की दृष्टि । सरागा एव भवति = राग से युक्त ही होती है । राग शब्द पर श्लेष होने से इसके दो अर्थ हैं - लालिमा से युक्त। कामासक्ति से युक्त। लालिमा का अर्थ लेने पर विरोध की प्रतीति होती है, किन्तु दूसरा अर्थ लेने पर उसका परिहार हो जाता है, अतः यहाँ विरोधाभास अलंकार है । तात्पर्य यह है कि बाहर से धवल या पवित्र दिखायी देने पर भी कामासक्ति से युक्त ही होती है । उज्झित - उज्झ् + क्त । धवलता- धवल + तल् + टाप् । शुष्कपत्रं वात्या इव = सूखे पत्ते को जैसे बवण्डर वाली आँधी । आत्मेच्छया अतिदूरं अपहरति = इच्छानुसार दूर उड़ा कर ले जाती हैं शुष्कं च तत् पत्रम् शुष्कपत्रम्, वातानां समूहः वात्या । वात्या धूल लेकर चक्कर काटते हुए चलने वाले बवण्डर को कहते हैं । यौवन-समये = युवावस्था में । समुद्भूतरजोभ्रान्तिः प्रकृतिः = जिसमें रज (धूल या रजोगुण) चक्कर वेग से बढ़ा रहता है। इस पर श्लेष है । यह वात्या और प्रकृति दोनों का विशेषण है ।

1- जिसमें धूल का चक्कर उठाने वाला बवण्डर हो ऐसी वात्या ।

2- जिसमें रजोगुण का विभ्रम अतिशय रूप में बढ़ा हुआ है ऐसी प्रकृति ।

समुद्भूत - सम्, उत् + भू + क्त । भ्रान्ति - भ्रम् + क्तिन् । प्रकृतिः - प्र + कृ + क्तिन् । वात+ वत् + टाप् । पुरुषम् आत्मेच्छया अतिदूरम् अपहरति = पुरुष को अपनी इच्छानुसार बहुत दूर भटका ले जाती है । सन्मार्ग से बहुत दूर हटा देती है ।

हिन्दी भावार्थ - यौवन के आरम्भ में प्रायः शास्त्ररूपी जल से धुलकर निर्मल अर्थात् अज्ञान रहित होने पर भी बुद्धि कलुषता को प्राप्त करती है। नवयुवकों की दृष्टि अपनी धवलता (अर्थात् सरलता) को न छोड़ने पर भी राग या कामुकतादि आसक्ति से युक्त होती है। जैसे धूल के बवण्डर वाली आँधी सूखे पत्ते को अपनी इच्छा से बहुत दूर उड़ा ले जाती है, वैसे ही युवावस्था में रजोगुण के भ्रम वाली प्रकृति पुरुष को अपनी इच्छा के अनुसार बहुत दूर भटका देती है ।

अभ्यास प्रश्न 1.

1. राजातारापीड किसके अभिषेक की बात करते हैं

क. वैशम्पायन ख. चन्द्रपीड ग. पुण्डरीक घ. शुकनाश

2. शुकनाश कौन था

क. मन्त्री ख. राजा ग. प्रतीहार घ. सैनिक

रिक्त स्थान की पूर्ति करें

3. दर्प .... दाह ।

4. सततमूलमन्त्रगम्यो .... विषयास्वादमोहः ।

सत्य / असत्य का निर्धारण करें

5 युवावस्था में उत्पन्न अज्ञान रूपी अन्धकार अति गहन होता है **( )**

6. रागवलेप नित्य स्नान से समाप्त होता है ( )

इन्द्रियहरिणहारिणी च सतत-दुरन्तेयमुपभोगमृगतृष्णिका । नवयौवन-कषायितात्मनश्च सलिलानीव तान्येव विषयस्वरूपाण्यास्वाद्यमानानि मधुरतराण्यापतन्ति मनसः। नाशयति च दिङ्मोह इवोन्मार्गप्रवर्त्तकः पुरुषमत्यासङ्गो विषयेषु।

शब्दार्थ - इन्द्रिय हरिणहारिण = इन्द्रिय रूपी हरिणों को लुभानेवाली, इन्द्रियाणि एवहरिणाः इन्द्रियहरिणाः, तान् हरति इति इन्द्रियहरिणहारिणी । हृ, णिनि,ङीप् । उपभोगमृगतृष्णिका का विशेषण है । इयम् उपभोगमृगतृष्णिका = यह कामोपभोग रूपी मृगतृष्णा । उपभोगः एव मृगतृष्णिका उपभोग मृगतृष्णिका । कर्मधारय । उप + भृज् + घञ् । सततम् अतिदुरन्ता = निरन्तर अतिशय दुःख के साथ समाप्त होने वाली । विषयसुखों से कभी तृप्ति नहीं होती, अपितु उनके भोग की प्रचण्ड इच्छा मृगतृष्णा के समान बढ़ती जाती है । मनु का कथन है - न जातु कामः कामानमुप - भोगेन शाम्यति । हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ नवयौवन-कषायितात्मनः = नयी युवावस्था से जिसका चित्त कसैला हो गया है काम भावना के विकार से त्रस्त है, ऐसे पुरुष के। नवं च तत् यौवनम् नवयौवनम् । तेन कषायितः आत्मा यस्य तथाभूतः, तस्य । कर्मधारयगर्भित बहुव्रीहि । मन के सन्दर्भ में कसैला का अर्थ होगा परिवर्तित, भोगेच्छा से अभिभूत होना । कषायःइतच् प्रत्यय = कषायित । सलिलानि इव = जल के समान, जैसे आँवला आदि कसैली वस्तु खाने पर जल मीठा न होने पर भी मीठा लगता है । तानि एव विषयस्वरूपाणि = वे ही भोग की वस्तुएँ । विषयस्य स्वरूपाणि विषयस्वरूपाणि । आस्वाद्यमानानि = आस्वादन की जाने पर, भोग करते जाने पर । आ + स्वद् + णिच् + शानच् कर्म में । मनसः मधुरतराणि आपतन्ति = मन के लिए और मधुर प्रतीत होती है । मधुर+ तरप् । दिग्मोहः इव = दिग्भ्रम के समान । दिशः मोहः दिङ्मोहः। उन्मार्गप्रवर्त्तकः = विपरीत मार्ग पर ले जाने वाला । उत् ऊर्ध्व यावत् मार्गः उन्मार्गः। तस्मिन् प्रवर्त्तकः उन्मार्गप्रवर्त्तकः। विषयेषु अत्यासङगः = विषयभोगों में अतिशय आसक्ति । अतिशयितः आसंगअत्यासंग:। आ + सञ्ज् + घञ् । पुरुषं नाशयति = पुरुष को भटका देती है, नष्ट कर देती है । यहाँ उपमा अलंकार है ।

हिन्दी भावार्थ - विषयभोग की यह मृगतृष्णा इन्द्रियरूपी हरिणों को दौड़ाने वाली और सतत अन्त में घोर दुःख देने वाली होती है । नयी युवावस्था के कारण जिस पुरुष का चित्त भोगासक्ति से कसैला हो जाता है, उसके मन को वे ही विषयभोग और अधिक मीठे प्रतीत होने लगते हैं जैसे (मुख कसैला होने पर) जल और मीठा लगने लगता है । विषयभोगों में अतिशय आसक्ति दिग्भ्रम के समान पुरुष को विपरीत मार्ग पर ले जाकर उसका नाश कर देती है उसे भटका देती है।

भवादृशा एव भवन्ति भाजनान्युपदेशानाम् । अपगतमले हि मनसि स्फटिकमणाविव रजनिकर-गभस्तयो विशन्ति सुखेनोप देशगुणाः। गुरुवचनममलमपि सलिलमिव महदुपजनयति श्रवणस्थितं शूलमभव्यस्य। इतरस्य तु करिण इव शङ्खाभरणमाननशोभासमुदयमधि- कतरममुपजनयति । हरति च अतिमलिनमन्धकारमिव दोषजातं प्रदोषसयम निशाकर इव ।

शब्दार्थ - भवादृशाः एव = आप जैसे ही। भवन्तः इव दृश्यन्ते ये ते। भवत् + दृश् + क´ प्रत्यय। उपदेशानां भाजनानि = उपदेशों के पात्र होते हैं, योग्य होते हैं। उपदेशः - उप + दिश् + घञ् । हि = क्योंकि। अपगतमले मनसि = विकार रहित मन में। मन के पक्ष में मल का अर्थ होगा कामादि विकार। अपगतः मलः यस्मात् तादृशे। यह मन और स्फटिक मणि दोनों का विशेषण है। अपगतमले स्फटिक मणौ = धूल और मैल हटाकर स्वच्छ किये गये स्फटिक मणि में। स्फटिकश्चासौ मणिश्च स्फटिकमणिः। कर्मधारय। तस्मिन् रजनिकर - गभस्तयः इव = चन्द्रमा की किरणों के समान। रजनिकरः = चन्द्रमा। रजनीं करोति इति रजनिकरः, तस्य गभस्तयः रजनिकरगभस्तयः। उपदेशगुणाः सुखेन विशन्ति = उपदेश के गुण या वचन सुखपूर्वक सरलता से प्रवेश करते हैं, प्रभाव डालते हैं। श्लिष्ट उपमा अलंकार है। दुर्जन और भले व्यक्ति पर उपदेश के निर्मल वचनों का क्या प्रभाव पड़ता है इसका वर्णन करते हैं। अमलम् अपि सलिलम् इव = निर्मल भी जल के समान। (अमलम् अपि) गुरुवचनम् = गुरुजन के रागद्वेषरहित वचन। श्रवणस्थितम् शुलम् उपजनयति = कान में पड़ने पर शूल उत्पन्न करता है। यहाँ भी दो अर्थ होंगे - निर्मल भी जल कान में पड़ने पर शूल उत्पन्न करता है और रागद्वेष रहित निर्मल भी गुरुवचन कान में पड़ने पर शूल जैसा कष्ट या क्रोध उत्पन्न करता है। अभव्यस्य = दुष्ट के लिए। भव्य का अर्थ है भला, सज्जन। अभव्य का अर्थ होगा - दुराचारी, दुर्जन के लिए। इतरस्य तु = किन्तु दूसरे के लिए, अर्थात् भव्य के लिए, भले के लिए। करिणः = हाथी के लिए। करः अस्यास्ति इति करी, तस्य। कर+इन्। शङ्खाभरणम् इव = शङ्खों के आभूषण के समान। शङ्खः एव आभरणम् शङ्खाभरणम्। अधिकतरम् आननशोभसमुदयम् उपजनयति = और अधिक मुख की शोभा के सम्भार को और बढ़ा देता है। आननस्य शोभा आननशोभा, तस्याः समुदयम्। उप + जन् + णिच् + लट्। अतिमलिनम् अन्धकारम् इव सकलं दोषजातं हरति च = गुरु या गुरुजनों का उपदेश अत्यन्त काले अन्धकार जैसे सम्पूर्ण दोषों के समूह को दूर करता है। अतिशयेन मलिनम् अतिमलिनम्। दोषाणां जातम् दोषजातम् - अवगुणों के समूह को। अतिमलिनम् में श्लेष है, अतः दोषजातम् के साथ भी इसका अर्थ किया जायेगा।

हिन्दी भावार्थ - आप जैसे ही उपदेश के पात्र होते हैं। जैसे धूल आदि मैल हटा देने पर स्फटिक मणि में चन्द्रमा की किरणें प्रवेश करने लगती हैं, वैसे ही कामादि विकार से रहित मन में उपदेश के गुण सुख सहित प्रभाव डालते हैं। जैसे निर्मल जल भी कान में पड़ने पर शूल उत्पन्न करता है, वैसे ही दुर्जन के लिए गुरुजन का रागद्वेषादि रहित निर्मल वचन भी कान में पड़ने पर उसका क्रोध बढ़ाता है। उससे भिन्न (भले व्यक्ति) के लिए वह मुख की शोभा को और अधिक वृद्धि प्रदान करता है जैसे शङ्ख का आभूषण हाथी के मुख की शोभा बढ़ा देता है।

गुरुपदेशः प्रशमहेतुर्वयःपरिणाम इव पलितरूपेण शिरसिजजालममलीकुर्वन् गुणरूपेण तदेव परिणमयाति। अयमेव चानास्वादितविषयरसस्य ते काल उपदेशस्य। कुसुमशर-शरप्रहारजर्जरिते हि हृदि जलमिव गलत्युपदिष्टम्।

शब्दार्थ - अत्यन्त कलुष से युक्त भी दोषसमूह को। वही गुरुपदेश प्रशम का हेतु होता है

प्रशमहेतुः = काम आदि विकारों के शमन का हेतु । प्रशमस्य हेतुः प्रशमहेतुः । प्र + शम् + घञ् । गुरुपदेशः = गुरु जन का उपदेश । गुरुपदेश की उपमा वयः परिणाम अर्थात् वृद्धावस्था से दी गयी है ा। वयः परिणामः इव शिरसिजजालम् पलितरूपेण अमलीकुर्वन् = जैसे वृद्धत्व सिर के केशों को पलित अर्थात् सफेदी के रूप में निर्मल बनाता हुआ वयसः परिणामःवयः परिणामः। शिरसि जायन्ते इति शिरसिजाःतेषां जालम् । शिरसि + जन् + ड प्रत्यय । अमलीकुर्वन = न मलं यस्मिन् तत् अमलम् अनमलम् अमलं सम्पद्यमानं करोति इति । अमल + कृ + च्वि + शत् । तदेव गुणरूपेण परिणमयति = उन केशों को ही गुण रूप में बदल देता है । वैसे ही गुरु का उपदेश बुद्धि में उठने वाले विचारों को दोषरहित करता हुआ उन्हें गुणरूप में बदल देता है । परि + नम् + णिच् + लट् लकार । यहाँ यह भी अर्थ लिया जा सकता है कि गुरूपदेश प्रशम अर्थात् इन्द्रियनिग्रह का हेतु बनकर दोष समूह को भी गुण रूप में बदल देता है । अयम् एव च = और यही है । अनास्वादितविषयरसस्य ते = विषयभोगों के रस का आस्वादन किये हुए तुम्हारे लिए । विषयाणां रसः विषयरसः, आस्वादितः विषयरसः येन सः आस्वादितविषयरसः, न आस्वादितविषयरसः, अनास्वा 0 तस्य । कुसुमशर - शर - प्रहार - जर्जरिते = कामदेव के बाणों के प्रहार से जर्जरित, छलनी बने हुए, तार - तार हुए, जीर्ण हुए । कुसुमशर = कामदेव, कुसुमानि एव शराः यस्य सः, कुसुमशरः, तस्य शराः कुसुमशरशराः, तेषां प्रहारः कुसुमशरशरप्रहार +, तैः जर्जरितम्, तस्मिन् । (हृदि का विशेषण) । हृदि = हृदय में । हृत् से सप्तमी एकवचन । उपदिष्टं जलम् इव गलति = उपदेश का वचन जल के समान बह जाता है । व्यर्थ हो जाता है । उपमा अलंकार है । शरशर की आवृत्ति में लाटानुप्रास है ।

हिन्दी भावार्थ - और गुरुजन का उपदेश जैसे प्रदोष समय का चन्द्रमा अत्यन्त काले अन्धकार को भी दूर कर देता है, वैसे ही अतिशय निन्दित दोषों के समूह को दूर कर देता है । चित्त के विकारों के प्रशमन का कारणभूत गुरुपदेश बुद्धि में उत्पन्न विचारों को वैसे ही गुण के रूप में बदल देता है, जैसे बुढ़ापा सिर के केशों को निर्मल करते हुए उन्हें पलित या सफेदी में बदल देता है । विषयभोगों का आस्वादन न किये हुए आपके लिए तो यही उपदेश का समय है । कामदेव के बाणों के प्रहार से छलनी हुए हृदय में उपदेश का वचन जल के समान नीचे गिरकर व्यर्थ हो जाता है ।

अकारणं च भवति दुष्प्रकृतेरन्वयः श्रुतं चाविनयस्य । चन्दनप्रभवो न दहति किमनलः द्य किं वा प्रशमहेतुनापि न प्रचण्डतरीभवति वडवानलो वारिणा द्य गुरुपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमल - प्रक्षालन- क्षममजलं स्नानम्, अनुपजातपलितादिवैरूप्यमजरं वृद्धत्वम्, अनारोपितमेदोदोषं गुरुकरणम् ।

शब्दार्थ - दुष्प्रकृतेः = दुष्ट स्वभाव वाले का । दुष्टा प्रकृतिः यस्य सः दुष्प्रकृतिः। अन्वयः श्रुतं च = उच्च वंश और शास्त्रों की शिक्षा । अविनयस्य अकारणं भवति = उसकी उद्दण्डता (के न होने का) कारण नहीं होती । ‘अविनयस्य’ के स्थान पर ‘विनयस्य’ पाठ भी है । जब अर्थ होगा विनय का कारण नहीं होती । तात्पर्य यह है कि जिसका स्वभाव ही दूषित है, उसके अविनय के विष्य में उसका उच्च वंश में जन्म लेना या गुरु से शास्त्रों की शिक्षा प्राप्त किये होना कोई अन्तर

नहीं उत्पन्न करता , निष्प्रभावी होता है। विनयः - वि + नी + अच्। चन्दनप्रभवः अनलः = चन्दन की लकड़ी से उत्पन्न अग्नि। चन्दनात् प्रभवः यस्य तथाभूतः चन्दनप्रभवः। किं न दहति =क्या नहीं जलाता है ? वह भी जलाता ही है। इसी प्रकार उच्च वंश में उत्पन्न और शास्त्रों का अध्ययन किया हुआ भी यदि उसका स्वभाव दुष्टता का है तो उद्दण्ड होता ही है। किं वा = अथवा क्या ? प्रशमहेतुना अपि वारिणा = ताप को पूर्णतः शान्त करने का हेतु होने पर भी जल से। वडवानलः प्रचण्डतरी न भवति = वडवानल और अधिक प्रचण्ड नहीं होता ? तात्पर्य यह है कि जैसे अग्नि बुझाने का हेतु होने पर भी जल से वडवानल और प्रचण्ड होता है और चन्दन शीतलता प्रदान करने वाला है किन्तु उसकी लकड़ी से उत्पन्न अग्नि भी जलाती है उसी प्रकार उच्च वंश में जन्म लेने पर अथवा शास्त्रों का अध्ययन किये जोने पर भी दुष्ट स्वभाव वाला उद्दण्ड होता है। अप्रचण्डतरः प्रचण्डतरः सत्म्पद्यमानः भवित इति। च्वि प्रत्यय। गुरुपदेशः च = और गुरु का उपदेश है। नाम = वस्तुतः। पुरुषाणाम् =पुरुषों के लिए। अखिल-मल-प्रक्षालन-क्षमम् = मन के सभी कालुष्य रूपी मैल को स्वच्छ करने में समर्थ। अखिलश्चासौ मलः अखिलमलः, तस्य प्रक्षालनम् अखिलमलप्रक्षालनम्। तस्य क्षमम् इति। अजलं स्नानम् = बिना जल का स्नान है। अनुपजा त- पलितादि- वैरूप्यम् = केश पकना आदि विरूपता जिसमें उत्पन्न नहीं है। पलितम् आदि यस्य तथाभूतम् च तत् वैरूप्यम। अजरं वृद्धत्वम् = जरा अर्थात् बुढ़ापा के बिना वृद्धत्व है। न जरा यस्मिन् तत् अजरम्। वृद्धस्य भावः वृद्धत्वम्। वृद्ध + त्व। अवस्था से वृद्ध न होने पर भी ज्ञान और आचरया में वृद्धवत्। अनारोपितमेदोदोषम् = चर्बी का दोष बढ़ाये बिना। मेदाः रूपः दोषः मेदोदोषः, न आरोपितः मेदोदोषः येन सः। आरोतपः-आ + रुह् + णिच + क्त। गुरूकरणम् = गुरु बनाना है। गुरु का अर्थ होगा मोटा और गौरवशाली। स्थूल होने पर चर्बी का दोष बढ़ जाता है, किन्तु गुरु के उपदेश से चर्बी बढ़े बिना व्यक्ति बुरु अर्थात् गौरवशाली हो जाता है। अगुरुं गुरुं सम्पद्यमानं करोति इति गुरुकरणम्। गरु + कृ + च्वि + ल्युट् प्रत्यय। यहाँ विरोधाभास है, चर्बी बढ़े बिना भारी पर अर्थ लेने पर।

हिन्दी भावार्थ - उच्च वंश में जन्म और शास्त्रों की शिक्षा दुष्ट स्वभाव वाले की उद्दण्डता के ऊपर कोई प्रभाव नहीं डालती। चन्दन से भी उत्पन्न अग्नि क्या जलाता नहीं है ? (अग्नि) को बुझाने के हेतु जल से भी क्या वडवानल और प्रचण्ड नहीं होता ? गुरुजन का उपदेश तो पुरुष के लिए सभी (उसके अन्तः के) कालुष्य रूपी मैल को धोने में समर्थ बिना जल का स्नान है। केश पकना आदि कुरूपता से रहित वृद्धावस्था के बिना भी वृद्धत्व है। चर्बी के दोष को बिना बढ़ाये गुरु (भारी अर्थात् गौरवशाली) बनाने की प्रक्रिया है।

अभ्यास प्रश्न. 2

1. हारिणी का क्या अर्थ है

क. चुराना ख. लुभाना ग. भगाना घ. मारना

2. कसैले मुख वाले व्यक्ति को जल कैसा लगता है

क. मीठा ख. तीता ग. स्वाद विहीन घ.बिना स्वाद

रिक्त स्थान की पूर्ति करें

3. भवादृशा एव .... भाजनानि।

4. जलमिव .... उपदिष्टम्।

सत्य / असत्य का ज्ञान करें

5. गुरूपदेश दोष समूह के शमन का कारण होता है ( )

6. चर्बी के दोष के बिना बढाये गुरू बनाने की प्रक्रिया है ( )

अति लघु - उत्तरीय प्रश्न

1 - धूल या मैल हटा देने पर स्फटिक मणि में क्या प्रवेश करने लगती है ?

2 - निर्मल जल भी किसमें पड़ने पर शूल उत्पन्न करता है ?

3 - शंख का आभूषण किसके मुख की शोभा बढ़ा देता है ?

4 - चन्द्रमा किसको दूर कर देता है ,

5 - गुरुजन का उपदेश किसके मैल को धोने में समर्थ बिना जल का स्नान हैं ?

2.4 सारांश

इस इकाई में गुरुपदेश का वर्णन किया गया है। गुरुजन का उपदेश जैसे प्रदोष समय का चन्द्रमा अत्यन्त काले अन्धकार को भी दूर कर देता है, वैसे ही अतिशय निन्दित दोषों के समूह को दूर कर देता है। चित्त के विकारों के प्रशमन का कारणभूत गुरुपदेश बुद्धि में उत्पन्न विचारों को वैसे ही गुण के रूप में बदल देता है, जैसे बुढ़ापा सिर के केशों को निर्मल करते हुए उन्हें पलित या सफेदी में बदल देता है। विषय भोगों का आस्वादन न किये हुए आपके लिए तो यही उपदेश का समय है। कामदेव के बाणों के प्रहार से छलनी हुए हृदय में उपदेश का वचन जल के समान नीचे गिरकर व्यर्थ हो जाता है। जैसे धूल आदि मैल हटा देने पर स्फटिक मणि में चन्द्रमा की किरणें प्रवेश करने लगती हैं, वैसे ही कामादि विकार से रहित मन में उपदेश के गुण सुख सहित प्रभाव डालते हैं। जैसे निर्मल जल भी कान में पड़ने पर शूल उत्पन्न करता है, वैसे ही दुर्जन के लिए गुरुजन का रागद्वेषादि रहित निर्मल वचन भी कान में पड़ने पर उसका क्रोध बढ़ाता है। चन्दन से भी उत्पन्न अग्नि क्या जलाता नहीं है ? (अग्नि) को बुझाने के हेतु जल से भी क्या वडवानल और प्रचण्ड नहीं होता ? गुरुजन का उपदेश तो पुरुष के लिए सभी (उसके अन्तः के) कालुष्य रूपी मैल को धोने में समर्थ बिना जल का स्नान है। केश पकना आदि कुरूपता से रहित वृद्धावस्था के बिना भी वृद्धत्व है। विषयभोग की मृगतृष्णा इन्द्रियरूपी हरिणों को दौड़ाने वाली और सतत अन्त में घोर दुःख देने वाली होती है। नयी युवावस्था के कारण जिस पुरुष का चित्त भोगासक्ति से कसैला हो जाता है, उसके मन को वे ही विषयभोग और अधिक मीठे प्रतीत होने लगते हैं जैसे (मुख कसैला होने पर) जल और मीठा लगने लगता है। स्वभाव से यौवन में उत्पन्न (अज्ञानरूपी) अन्धकार अत्यन्त गहन होता है, जो सूर्य द्वारा दूर नहीं किया जा सकता है, रत्नों के प्रकाश से नष्ट नहीं किया जा सकता, दीपक की ज्योति से हटाया नहीं जा सकता। (मदपान का नशा तो परिणाम अर्थात् पचकर उतर जाता है किन्तु) धनसम्पत्ति से उत्पन्न नशा

परिणाम अर्थात् वृद्धावस्था होने पर भी नहीं उतरता।

2.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
घोरा	गहरी ।
राज्यसुख-	राज्य के सुखों के समूह से उत्पन्न
सन्निपातनिद्रा	सन्निपात रोग की नींद।
गर्भेश्वरत्वम्	जन्म से ही राजा या
अभिनवयौवनत्वम	नयी युवावस्था होना।
अप्रतिमरूपत्वम्	अद्वितीय रूप से सम्पन्न होना ।
अमानुषशक्तित्वम्	मनुष्य से बढ़कर शक्ति से सम्पन्न होना ।
अनर्थपरम्परा	अनर्थों की कड़ी या शंखला है।
एषाम्	इन चारों में।
एकैकम्	प्रत्येक।
आयतनम्	घर हैं कारण है।
किमुत समवाय	फिर इनका समवाय होने पर

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 . 1 . ख 2. क 3 . ज्वरोष्मा 4. विषमो विषय 5. सही 6. गलत
अभ्यास प्रश्न 2 . 1 . ख 2. क 3 . भवन्ति 4. गलति 5. सही 6. सही
अति लघु - उत्तरीय प्रश्न (1) चन्द्रमा की किरणें (2) कान में पड़ने पर (3) हाथी के मुख की (4) काले अन्धकार को (5) कालुष्य रूपी मैल को धोने में समर्थ

2.7 सदर्भ ग्रन्थ सूची

1- ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
कादम्बरी	बाणभट्ट	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

2- संस्कृत साहित्य का इतिहास . बलदेव उपाध्याय शारदा निकेतन वी, कस्तूरवानगर सिगरा वाराणसी

2. 8 उपयोगी पुस्तकें

1-ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
शिवराजविजय	अम्बिकादत्तव्यास	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

2. 9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. इसका हिन्दी में अर्थ लिखिये - अकारणं च भवति दुष्प्रकृतेरन्वयः श्रुतं चाविनयस्य।

चन्दनप्रभवो न दहति किमनलः द्य किं वा प्रशमहेतुनापि न प्रचण्डतरीभवति वडवानलो वारिणा द्यगुरुपदेशश्च नाम पुरुषाणामखिलमल - प्रक्षालन - क्षममजलं स्नानम्, नुपजातपलितादि वैरूप्य मजरं वृद्धत्वम्, अनारोपितमेदोदोषं गुरुकरणम्।

2. बाण की गद्यशैली की विवेचना कीजिए।

इकाई 3. असुवर्णविरचनमग्राम्यम् से चिन्तितापि वञ्चयति तक व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना

संस्कृत गद्य साहित्य से सम्बन्धित खण्ड तीन की यह तीसरी इकाई है। इससे पूर्व की इकाई में गुरुपदेश का वर्णन किया गया है आपने यह जाना। गुरुजन का उपदेश जैसे प्रदोष समय का चन्द्रमा अत्यन्त काले अन्धकार को भी दूर कर देता है, वैसे ही अतिशय निन्दित दोषों के समूह को दूर कर देता है।

इस इकाई में आप चन्द्रापीड को शुकनास द्वारा दिये गए उपदेशों का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन से आप बता सकते है कि चन्द्रापीड कौन था ? चन्द्रापीड को उपदेश देते हुए कहते है कि कानों का सोने के बिना निर्मित अग्राम्य आभूषण है। ज्योतियों से बढ़कर प्रकाश है, ऐसा जागरण है, जो थकान नहीं उत्पन्न करता। राजाओं के लिए तो इसका विशेष महत्त्व है। उनको उपदेश देने वाले बिरले होते हैं। प्रजाजन भय के कारण राजा के वचन का प्रतिध्वनि के समान अनुगमन करते हैं। प्रचण्ड दर्परूपी श्वयथु रोग की सूजन के कारण उनके कानों के विवर बन्द होने से वे उपदेश दिये जाने पर भी सुनते नहीं हैं और सुनते रहने पर भी हाथी के समान नेत्रों को बन्द कर अनादर दिखाते हुए उपदेश देने वाले गुरुजनों को खिन्न कर देते हैं।

अत: इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आप चन्द्रापीड को शुकनास द्वारा दिये गए उपदेशों के महत्व को भली भाँति समझा सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- राजाओं की प्रकृति व अहंकार के विषय में बताएंगे।
- ज्योतियों से बढ़कर प्रकाश है, इसकी व्याख्या करेंगे।
- विदग्धता या पाण्डित्य के महत्व को समझाएंगे।
- गुरुजन का उपदेश जैसे प्रदोष समय का चन्द्रमा अत्यन्त काले अन्धकार को भी दूर कर देता है, इस तथ्य की समीक्षा कर सकेंगे।

3.3 असुवर्णविरचनमग्राम्यम्......... चिन्तितापि वञ्चयति तक व्याख्या

असुवर्णविरचनमग्राम्यं कर्णाभरणम्, अतीतज्योतिरालोकः, नोद्वेगकरः प्रजागरः। विशेषेण राज्ञाम्। विरला हि तेषामुपदेष्टारः। प्रतिशब्दक इव राजवचनमनुगच्छति जनो भयात्। उद्दामदर्पश्वयथुस्थगितश्रवणविवराश्चोपदिश्यमानमापि ते न शृण्वन्ति। शृण्वन्तोऽपि च गजनिमीलितेनावधीरयन्तः खेदयन्ति हितोपदेशदायिनो गुरुन्।

शब्दार्थ - असुवर्णविरचनम् = सोने के बिना बनाया गया। सुवर्णस्य विरचन यस्मिन् तत् सुवर्णविरचनम्, न सुवर्णविरचनम् असुवर्णविरचनम्। अग्राम्यम् = अग्राम्य, जो गँवारू नहीं है,

भद्दा नहीं है, सुन्दर। न ग्राम्यम् अग्राम्यम्। नञ् तत्पुरुष। ग्राम, यत्। कर्णाभरणम् = कानों का आभूषण है। गुरु का उपदेश कानों में पहुँचने पर उन्हें ज्ञान से भर देता है, अतः आभरण अथवा भरी जाने वाली वस्तु है, शोभा है। अतीतज्योतिः आलोकः = बिना ज्योति का प्रकाश है। अतीत ज्योतिः यस्मात् तथाभूतः। अन्य ज्योतियों से बढ़कर प्रकाश है। उपदेश से उत्पन्न ज्ञान का प्रकाश। अतीत- अति + इ + क्त। ज्योतिः - द्युत् + इसुन्। आलोकः - आ + लोक + घञ्। नोद्वेगकरः प्रजागरः = जिसमें किसी प्रकार का खेद नहीं होता इस प्रकार कर निरन्तर जागरण है। यहाँगुरुपदेश को पक्ष में प्रजागर का अर्थ होगा निपरन्तर जागरूकता। विशेषण राज्ञाम् = राजाओं के लिए तो इसका विशेष रूप से महत्त्व है। हि = क्योंकि। तेषाम् उपदेष्टारः विरलाः = उनको उपदेश देने वाले दुर्लभ होते हैं। उप+ दिश् +तृच्। प्रतिशब्दकः इव = प्रतिध्वनि के समान। प्रतिगतः शब्दः प्रतिशब्दः, प्रतिशब्दः एव प्रतिशब्दकः। जैसे कोई ध्वनि करने पर उसकी प्रतिध्वनि उसका अनुकरण करती है वैसे ही। जनः = लोग, प्रजाजन। भयात- भय के कारण। राजवचनम् अनुगच्छति = राजा के आदेश का ही अनुपालन करते हैं। राज्ञः वचनम् राजवचनम्। उद्दामदर्पश्वयथु - स्थगित- श्रवणविवराः = उत्कट दर्परूपी श्वयथु रोग से जिनके कानों के विवर सूजकर बन्द हो गये हैं। उद्दामा दर्पः एव श्वयथुः उद्दामदर्पश्वयथुः, तेन स्थगिते श्रवणविवरे येषां ते। उपदिश्यमानम् अपि = उपदेश दिये जाने पर भी। उप + दिश्+ शानच्, कर्म में। ते न शृण्वन्ति = वे नहीं सुनते हैं। शृण्वन्तः अपि च = और सुनते हुए भी। श्रु+शतृ। गजनिमीलितेन = हाथी के समान नेत्रों को बन्द कर। गजस्य निमीलितम् गजनिमीलितम्, तेन। उपमान तत्पुरुष। अवधीरयन्तः = अनादर करते हुए अव + धीर् + शतृ। हितोपदेशदायिनः गुरुन् खेदयन्ति = हितकारी उपदेश देनेवाले गुरुजनों को खिन्न कर देते हैं, कष्ट देते हैं। खिद + णिच् + लट् लकार। हितस्य उपदेशः हितोपदेशः हितोपदेशः, तं ददति इति।

हिन्दी भावार्थ - कानों का सोने के बिना निर्मित अग्राम्य आभूषण है। ज्योतियों से बढ़कर प्रकाश है, ऐसा जागरण है, जो थकान नहीं उत्पन्न करता। राजाओं के लिए तो इसका विशेष महत्त्व है। उनको उपदेश देने वाले बिरले होते हैं। प्रजाजन भय के कारण राजा के वचन का प्रतिध्वनि के समान अनुगमन करते हैं। प्रचण्ड दर्परूपी श्वयथु रोग की सूजन के कारण उनके कानों के विवर बन्द होने से वे उपदेश दिये जाने पर भी सुनते नहीं हैं और सुनते रहने पर भी हाथी के समान नेत्रों को बन्द कर अनादर दिखाते हुए उपदेश देने वाले गुरुजनों को खिन्न कर देते हैं।

अहंकार- दाहज्वरमूर्च्छान्धाकारिता विह्वला हि राजप्रकृतिः, अलीकाभिमानोन्मादकारिणी धनानि, राज्यविषविकारतन्द्राप्रदा राजलक्ष्मीः। आलोकयतु तावत् कल्याणाभिनिवेशो लक्ष्मीमेव प्रथमम्। इयं हि सुभटखड्ग- मण्डलोत्पलविभ्रम - भ्रमरी लक्ष्मीः क्षीरसागारात् उद्गता।

शब्दार्थ - हि - सचमुच। अहंकार - दाहज्वर - मूर्च्छान्धकारिता = अहंकार रूपी दाहज्वर की मूर्च्छा से जिसके लिए अन्धकार छाया हुआ करता है। अहम् इति करणम् अहङ्कार, स एव दाहज्वर अहंकारदाहज्वरः, तेन या मूर्च्छा, तया अन्धकारिता। विह्वलाः = व्याकुल, राजप्रकृतिः

= राजाओं की प्रकृति । राज्ञां प्रकृतिः राजप्रकृतिः। अहंकार पर दाहज्वर का आरोप होने से रूपकालंकार। तात्पर्य यह कि दाहज्वर की मूर्च्छा से जैसे अन्धकार या चेतनाशून्यता छा जाती है वैसे ही राजाओं की प्रकृति अंधकार से विवेक खो देती है और उनके लिए अज्ञान छा जाता है। अलीकाभिमानोन्मादकारीणि = मिथ्या अभिमान के उन्माद को उत्पन्न करने वाली । अलीकः अभिमानः अलीकाभिमानः (कर्मधारय), स एवं उन्मादः, अलीकाभिमानोन्मादः, तं कुर्वन्ति इति। धनानि = धन होते हैं । राजलक्ष्मीः = राज्य की प्रभुता और धन सम्पत्ति । राज्ञः लक्ष्मी राजलक्ष्मीः। राज्यविष - विकार - तन्द्राप्रदा = राज्य रूपी विष के विकार से उत्पन्न तन्द्रा देने वाली होती है। राज्यम् एव विषम् राज्यविषम् (कर्मधारय) तेन यः विकारः राज्यविषविकारः, तेन या तन्द्रा, तां प्रददाति इति। तन्द्रा = सुस्ती, प्रमाद, शिथिलता । राज्य पर विष का आरोप-रूपकालंकार। अवलोकयतु = देखें । आ + लोक् + लोट् । तावत् =तो । लक्ष्मीम् एव = लक्ष्मी को ही । प्रथमम् = पहले । कल्याणाभिनिवेशः = कल्याण चाहने वाले । कल्याणे अभिविनेशः अस्यास्ति इति । अभि, नि+ विश् + घञ् । पहले लक्ष्मी को ही देखिये, उस पर विचार कीजिए। यहाँ लक्ष्मी के दोषों या वैशिष्ट्यों को कहते हैं और उत्प्रेक्षा करते हैं कि उसने इनको वहाँ अपने साथ रहने वालों से लिया है । श्लेष होने से इन विशेषताओं के वाचक शब्दों के दो-दो अर्थ होंगे । हि = सचमुच । इयम् = यह राजलक्ष्मी । सुभटखड्गमण्डलोत्पलविभ्रमभ्रमरी = श्रेष्ठ वीरों की तलवार समूह रूपी कमलों के वन में विलास करने वाली भ्रमरी के रूप वाली लक्ष्मी । शोभनाश्च ते भटाः सुभटाः। खड्गानां मण्डलं खड्गमण्डलम् । सुभटानों खड्गमण्डलम्, सुभटखड्गमण्डलम् । उत्पलानां वनम् इति उत्पलवनम् । सुभटखड्मण्डलम् एवं उत्पलवनम् सुभटखड्गमण्डलोत्पलवनम्, तत्र विभ्रमः यस्याः सा । खड्गमण्डल पर उत्पलवन का् आरोप और लक्ष्मी पर भ्रमरी का आरोप है । क्षीरसागरात् = क्षीरसागर से । क्षीरस्य सागरात् । उद्गता = निकली है । उ्द + गम् + क्त + टाप् । प्रसिद्ध कथा है कि देवों और असुरों के समुद्र मन्थन से लक्ष्मी प्रकट हुई थीं ।

हिन्दी भावार्थ- राजाओं की प्रकृति अहंकार रूपी दाहज्वर की मूर्च्छा से अज्ञान के अन्धकार से भरी हुई और व्याकुल होती है। उनके धन मिथ्या अभिमान का उन्माद उत्पन्न करते हैं। राजलक्ष्मी राज्य रूपी विष के विकार के रूप में तन्द्रा उत्पन्न करने वाली होती है। कल्याण की चाह करने वाले आप पहले लक्ष्मी को ही देखें। श्रेष्ठ वीरों की तलवार रूपी कमलों के वन में विहार करने वाली भ्रमरी रूपी लक्ष्मी क्षीरसागर से निकली है ।

पारिजातपल्लवेभ्यो रागम्, इन्दुकलादेकान्तवक्रताम्, उच्चैःश्रवसश्चञ्चलताम्, कालकूटान्मोहनशक्तिम्, मदिरायाः मदम्, कौस्तुभमणेर्नैष्टुर्यम्, इत्येतानि सहवासपरिचयवशाद् विरहविनोदचिह्नानि गृहीत्वैवोद्गता । न ह्येवंविधम-पवरिचितमिह जगति किंचिदस्ति यथेयमनार्या। लब्धापि खलु दुःखेन परिपाल्यते। दृढगुणसन्दाननिस्पन्दीकृतापि नश्यति ।

शब्दार्थ - पारिजातपल्लवेभ्यः रागः = पारिजात वृक्ष के पल्लवों से राग । पारिजात के पक्ष में राग का अर्थ होगा लालिमा और लक्ष्मी के पक्ष में अर्थ होगा अनुराग । इन्दुशकलात्

एकान्तवक्रताम् = चन्द्रलेखा से अनोखा टेढ़ापन लेकर। इन्दोः शकल् इन्दुशकलम्, तस्मात्। एकान्तं यथा स्यात् तथा वक्रता एकान्तवक्रता, ताम्। लक्ष्मी के पक्ष में अर्थ होगा प्रतिकूलता, कुटिल आचरण। उच्चैःश्रवसः चंचलताम् = उच्चैःश्रवा नाम के अश्व से चंचलता। उच्चैःश्रवा इन्द्र का अश्व है। चंचलस्य भावः चंचलता। चंचल + तल् + टाप्। कालकूटात् = कालकूट विष से। मोहनशक्तिम् = मोहने की शक्ति लेकर। कालकूट के पक्ष में मूर्च्छित करने की, लक्ष्मी के पक्ष में वशीभूत करने की क्षमता। मोहनस्य शक्तिः, ताम्। मदिरायाः मदम् = मदिरा से मद अर्थात् नशा लेकर, मद = अल्हड़ता, उद्धत स्वभाव। कौस्तुभमणेः नैष्ठुर्यम् = कौस्तुभ मणि से कठोरता लेकर। निष्ठुरस्य भावः नैष्ठुर्यम्। निष्ठुर + ष्यञ्। इति = इस प्रकार। एतानि = ये। सहवासपरिचय - वशात् = एक साथ निवास से उत्पन्न परिचय के कारण। सह वसनं सहवासः। तेन यः परिचयः, तस्य वशात्। वास = वस् + घञ्। विरहविनोदचिह्नानि = विरह में मनबहलाव के चिह्नों को लेकर। विरहे विनोदः विरहविनोदः, तस्य चिह्नानि। विरह - वि + रह्+ अच्। विनोदः- वि + नुद् + घञ्। गृहीत्वा एव उद्गता = लेकर ही निकली है। एवंविधम् = इस प्रकार का। एवं विधा यस्य तत्। अपरिचितम् = परिचयरहित, परिचय का न रखने वाला। इह जगति = इस संसार में। किंचित् अपरम् अस्ति = कुछ दूसरा नहीं है। यथा इयम् अनार्या = जैसी यह अनार्या, दुष्टा लक्ष्मी। लब्धा अपि = प्राप्त होने पर भी। खलु = निश्चय ही। दुःखेन परिपाल्यते = इसकी रक्षा कठिनाई से हो पाती है। परि+ पाल् + कर्मवाच्य लट्। दृढगुण- पाश - सन्दान - निष्पन्दीकृता अपि = गुण रूपी रस्सियों के दृढ बन्धनों से गतिहीन बना दी जाने पर भी। गुणाः एव पाशः गुणपाशः, दृढश्चासौ गुणपाशः, दृढगुणपाशः, तेन यत् सन्दानम्, दृढगुणपाशसन्दानम्, तेन निष्पन्दीकृता इति दृढगुणपाशनिष्पन्दीकृता। स्पन्दन स्पन्दः, निर्गतः स्पन्दः यस्याः सा निष्पन्दाः, अनिष्पन्दा निष्पन्दा सम्पद्यमाना कृता इति। च्वि प्रत्यय। नश्यति = नष्ट हो जाती है, गायब हो जाती है। गुणों पर पाश का आरोप होने से रूपक है और विशेषोक्ति है।

हिन्दी भावार्थ - पारिजात के पल्लवों से राग अर्थात् अनुराग, चन्द्रलेखा से अनोखी वक्रता या कुटिलता, उच्चैःश्रवा से चंचलता, कालकूट विष से मोहन की, मूर्च्छित करने अर्थात् वश में करने की शक्ति, मदिरा से मद, कौस्तुभ मणि से कठोरता - इन सबको साथ रहने के परिचय के कारण विरह में मनबहलाव के चिह्नों के रूप में लेकर ही निकली है। इस संसार में इस प्रकार का दूसरा कुछ भी ऐसा अपरिचित नहीं है, जैसी यह अनार्या लक्ष्मी। मिल जाने पर भी बड़े दुःख से इसकी रक्षा हो पाती है। गुणों रूपी रस्सी से दृढ़ता से बाँध कर जकड़ दिये जाने पर भी निकल कर चली जाती है।

उद्दामदर्पभटसहस्रोल्लासितासिलतापञ्जरविधृताप्यपक्रामति । दजल-दुर्दिनान्धकार-गज-घटित- घनघटा-परिपालितापि प्रपलायते। न परिचयं रक्षति। नाभिजनमीक्षते। न रूपमालोकयते। न कुलक्रममनुवर्तते। न शीलं पश्यति। न वैदग्धं गणयति। न श्रुतमाकर्णयति। न धर्ममनुरुध्यते। न त्यागमाद्रियते। न विशेषज्ञतां विचारयति। नाचारं पालयति।

शब्दार्थ - उद्दाम- दर्प- भट - सहस्रोल्लासितासि - लता - पंजरविधृता अपि = उत्कट अहंकार से युक्त सहस्रों वीरों द्वारा चमकायी गयी लता जैसी (लम्बी) तलवारों के पिंजरे में घेरी गयी भी। दाम्नः उद्गतः उद्दामः, उद्दामश्चासौ दर्पः उद्दामदर्पः । उद्दामदर्पः येषां तथाभूतः ये भटाः, उद्दामदर्पभटाः, तेषां सहस्राणि, तैः उल्लसिताः असयः लताः इव उद्दामदर्पभटसहस्रासिलताः। ताः एवं पंजरम्। तस्मिन् विधृता । अपक्रामति = भाग जाती है । सहस्रों वीर अपनी तलवारों के बल पर उसे अपने वश में करते हैं और उसकी रक्षा के लिए तत्पर रहते हैं, फिर भी वह उनके वश में नहीं रहती । मदजल- दुर्दिनान्धकार - गज - घटित - परिपालिता अपि = मदजल की वर्षा से अन्धकार उत्पन्न कर देने वाले हाथियों की घनी पंक्ति द्वारा सुरक्षित की गयी भी । मदजलेन दुर्दिनं मदजलदुर्दिनम्, तेन अन्धकारः येभ्यः तथाभूताः ते गजाः मदजलदुर्दिनान्धकारगजाः, तैः घटितैः घनघटाभिः परिपालिता । प्रपलायते = भाग जाती है, अन्यत्र चली जाती है । न परिचयं रक्षति = न परिचय का निर्वाह करती है । न अभिजनम् ईक्षते = न उत्तम कुल का विचार करती है । न रूपम् आलोकयते = न रूप या सौन्दर्य को देखती है । न कुलक्रमम् अनुवर्तते = न किसी एक कुल में रहने के क्रम का अनुसरण करती है । कुलस्य क्रमः कुलक्रमः, तम्। न शीलं पश्यति = उत्तम चरित्र को नहीं देखती । न वैदग्धयं गणयति = विदग्धता या पाण्डित्य को कुछ नहीं गिनती । न श्रुतम् आकर्णयति = शास्त्रज्ञान को नहीं सुनती, अर्थात् शास्त्रों के ज्ञान पर ध्यान नहीं देती । न धर्मम् अनुरुध्यते = धर्म का अनुरोध नहीं करती, धर्म का अनुसरण नहीं करती। न त्यागम् आद्रियते = न त्याग का आदर करती है । कोई दानी और त्यागशील है इस हेतु उसके प्रति आदर नहीं रखती । न विशेषज्ञतां विचारयति = न विशेष ज्ञान से सम्पन्न होने का विचार करती है। विशेष + ज्ञा + क । विशेषज्ञस्य भावः विशेषज्ञाता । न आचारं पालयति = न आचार की रक्षा करती है । आचारवान् के समीप ही रहने का विचार नहीं करती ।

हिन्दी भावार्थ- उत्कट अहंकार से युक्त सहस्रों वीरों द्वारा चमकायी गयी लता जैसी (लम्बी) तलवारों के पिंजरे में बन्द की गयी भी निकल कर भाग जाती है । मदजल की वृष्टि के अन्धकार में हाथियों की घनी पंक्ति द्वारा निगरानी किये जाने पर भी पलायन कर जाती है । न परिचय का निर्वाह करती है , न उच्च कुल का विचार करती है, न रूप - सौंदर्य को देखती है, न किसी एक कुल में रहने के क्रम का अनुसरण करती है, न सदाचरण को देखती है, न विदग्धता को कुछ गिनती है, न शास्त्रज्ञान को सुनती है, न धर्म का अनुरोध रखती है, न त्याग के लिए कोई आदर रखती है, विशेषज्ञता का विचार नहीं करती और न आचार का पालन करती है ।

न सत्यमनुबुध्यते । न लक्षणं प्रमाणीकरोति । गन्धर्वनगरलेखेव पश्यत एव नश्यति । अद्याप्यारूढमन्दर-परिवर्तवर्त-भ्रान्ति जनित-संस्कारेव परिभ्रमति। कमलिनी-सञ्चरण-व्यतिकर- लग्ननलिननालकण्टकेव न क्वचिदपि निर्भरमाबध्नाति पदम्। अतिप्रयत्नविधृतापि परमेश्वरगृहेषु विविधगन्धगजगण्डमधुपान मत्तेव परिस्खलति। पारुष्यमिवोपशिक्षितुमसिधारासु निवसति ।

शब्दार्थ - न सत्यम् अनुबुध्यते = न सत्य को पहचानती है । सत्य का विचार नहीं करती । न लक्षणं प्रमाणीकरोति = सामुद्रिक शास्त्र के लक्षणों या शुभ चिह्नों को प्रमाणित नहीं करती ,

सत्य सिद्ध नहीं करती। अप्रमाणं प्रमाणं सम्पद्यमानं करोति इति। प्रमाण+ च्वि + लट्लकार। गन्धर्वनगर-लेखा इव = गन्धर्वनगर के दृश्य के समान। गन्धर्वाणां नगरं गन्धर्वनगरम्, तस्य लेखा। गन्धर्वनगर क्षितिज पर दिखायी पड़ने वाला एक प्राकृतिक दृश्य है। पश्यतः एव नश्यति = देखते ही देखते नष्ट हो जाती है, लुप्त हो जाती है। अद्यापि = आज भी, समुद्रमन्थन के समय से कितने ही युग बीत जाने पर भी। आरूढ - मन्दर - परिवर्तावर्त- भ्रान्ति - जनित- संस्कारा इव = मानो मन्द्राचल पर्वत से मथने से बने जल के आवर्त्त में चक्कर खाने से उत्पन्न संस्कारवाली मन्दरस्य परिवर्तः मन्दरपरिवर्तः, आरूढ़ः यः मन्दरपरिवतः आरूढमन्दरपरिवर्तः तेन भ्रन्तिः, तया जनितः यः संस्कारः यस्याः सा। किसी गोल घूमने वाले चर्खी आदि यन्त्र पर बैठकार घुमाये जाने पर उससे उतरने के बाद भी कुछ समय तक घूमने का संस्कार बना रहता है। वैसे ही मन्दराचल से समुद्र मथे जाने से उत्पन्न जल के भँवर में फँसकर चक्कर खाने से उत्पन्न संस्कार से लक्ष्मी अभी भी घूमती रहती है। अति -प्रयत्नविधृता अपि = बड़े प्रयत्न से रोक कर रखी गयी भी। अतिशयितः प्रयत्नः अतिप्रयत्नः, तेन विधृता। वि + धृ + क्त + टाप्। परमेश्वरगृहेषु = बड़े राजाओं और सम्पत्तिशालियों के घरों में। परमाश्च ते ईश्वराः परमेश्वराः, तेषाम् गृहेषु। विविध- गन्धगज - गण्डमधुपानमत्ता इव = मानो अनेक प्रकार के मदगन्ध वाले हाथियों के कपोलों के मद रूपी मदिरा का पान करने से मतवाली होकर। विविधाः ये गन्धगजाः विविधगन्धगजाः, तेषां गण्डेषु यत् मधु विविधगन्धगजगण्डमधु, तस्य पानेन मत्ता। यहाँ भी उत्प्रेक्षालंकार है। गन्धगज श्रेष्ठ गज होते हैं। परिस्खलति = गिरती है, इधर-उधर चली जाती है। पारुष्यम् = कठोरता, क्रूरता को। उपशिक्षितुम् इव = मानो सीखने के लिए। उप + शिक्ष् + तुमुन्। असिधारासु = तलवारों की धार में निवास करती है। अर्थात् क्रूरतापूर्वक जो वीर अपनी तलवार से दूसरों को नष्ट करता है, उसी के अधीन हो जाती है।

हिन्दी भावार्थ - यह सत्य को नहीं समझती, किसी सामुद्रिकशास्त्र के लक्षण को भी प्रमाणित नहीं करती। गन्धर्वनगर के दृश्य के समान देखते-देखते ही लुप्त हो जाती है। आज तक मानो मन्दराचल पर्वत से मथने से बने जल के आवर्त में चक्कर खाने से उत्पन्न संस्कार के कारण घूमती रहती है। कमलिनियों के मध्य घूमने के सम्पर्क से मानो कमलनालों के काँटे चुभने के कारण, कहीं भी पैरों को पूरी तरह नहीं रखती। बड़े राजाओं और धनियों के घर प्रयत्नपूर्वक सुरक्षित रखी गयी भी मानो विविध गन्धगजों के कपोलों से गिरने वाले मदजल रूपी मद के पान से मतवाली होकर इधर-उधर गिरती है।

विश्वरूपत्वमिवगृहीतुमाश्रिता नारायणमूर्त्तिम, अप्रत्ययबहुला च दिवसान्तकमलमिव समुपचित-मूल-दण्ड-कोश-मण्डलमपि मुञ्चति भूभुजम्, लतेव विटपकानध्यारोहति। गङ्गेव वसुजनन्यपि तरङगबुद्बुद्चंचला,

शब्दार्थ - विश्वरूपत्वम् गृहीतुम् इव = मानो विश्वरूप धारण करने के लिए, सभी पदार्थो के रूप में अभिव्यक्त होने के लिए। विश्वानि रूपाणि यस्य सः विश्वरूपः, तस्य भावः। नारायणमूर्त्तिम् आश्रिता = नारायण भगवान् विष्णु के शरीर का इसने आश्रय लिया है। यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है। अप्रत्ययबहुला च = और विश्वास से भरी रहने वाली, किसी पर विश्वास न करने वाली। न

प्रत्ययः अप्रत्ययः, अप्रत्ययः बहुलः यस्याः तथाभूता। समुपचित- मूल- दण्ड- कोश - मण्डलम दिवसान्तकमलम् इव = जिसके मूल, दण्ड, कोश और मण्डल पूर्ण विकास को प्राप्त हैं ऐसे सायंकाल के कमल के समान। यहाँ श्लेषमूलक उपमा है। भूभुज = राजा की उपमा सायंकालीन कमल से की गयी है। अतः चार शब्दों के दो-दो अर्थ होंगे - एक कमल के पक्ष में और एक राजा के पक्ष में। समुचित- वृद्धि को प्राप्त, मूल = कमल की जड़, राजा का मूल अर्थात् राज्य। दण्ड = कमल का डण्ठल, राजा की सेना। कोश = कमल का परागकोश, राजा का कोष। मण्डल = कमल का घेरा, राजा के सहायक। मूलं च, दण्डश्च, कोषश्च, मण्डलं च मूलदण्डकोशमण्डलानि, समुपचितानि मूलदण्डकोशमण्डलानि यस्य तत्। दिवसस्य अन्तः दिवसान्तः, तस्य कमलम्। समुपचित- मूल- दण्ड- मण्डलम् अपि = जिसका राज्य, सेना, कोष और मित्रगण का समूह पूर्णतः समृद्ध है, ऐसे राजा को भी । भूभुजम् मुंचति = राजा को छोड़ देती है, जैसे दिवस के अन्त में कमल की शोभा रहने वाले तथा उनके कामुकतापूर्ण व्यापारों में सहायक, धूर्त पुरुष। गंगा इव = गंगा के समान। अब लक्ष्मी की गंगा से उपमा देते हैं दो श्लिष्ट विशेषणों द्वारा। वसुजननी अपि = (1) वसु देवताओं की माता होने पर भी - गंगा के पक्ष में। (2) वसु अर्थात् धन की जननी उत्पन्न करने वाली। तरंबुद्बुद् चंचला = तरंगों और बुद्बुद् के समान चंचल। गङ्गा के पक्ष में वत् = युक्त - वतुप प्रत्यय। लक्ष्मीपक्ष में वत् = इव। कमल को छोड़ देती है, वैसे ही लक्ष्मी सभी प्रकार से समृद्धि प्राप्त करने वाले राजा को भी छोड़ देती है। भुवम् भुनक्ति इति भूभुजम्। भू + भुज् + क्विप्। लता जैसे विटपक वृक्ष की शाखाओं पर चढ़ती है, वैसे ही लक्ष्मी धूर्त विटों के स्वामी का आश्रय लेती है। इसे ही श्लिष्टोपमा द्वारा कहते हैं। लता इव = लता के समान। विटपकान् अध्यारोहति = विटों के स्वामियों का आश्रय लेती है। विटपकान् -1- छोटे वृक्षों पर चढ़ती है। 2- राजाओं के साथ।

हिन्दी भावार्थ - मानो विश्वरूपत्व पाने के लिए उसने नारायण भगवान् विष्णु के शरीर का आश्रय लिया हो, अविश्वास से भरी हुई वह मूल, दण्ड, कोश और मण्डल की पूर्ण वृद्धि प्राप्त कर लेने वाले सायंकालीन कमल के समान राज्य, सेना, कोष और मित्र गण से सम्पन्न भी राजा को छोड़ देती है। लता जैसे विटपकों (छोटे वृक्षों) पर चढ़ती है, वैसे ही वह धूर्त विटों के स्वामियों का आश्रय लेती है। वसु नाम के देवताओं की माता और तरंगों एवं बुद्बुदों से चञ्चल गंगा के समान वसु अर्थात् धन को उत्पन्न करने वाली होने पर भी तरंगों और बुद्बुद् के समान चंचला है।

अभ्यास प्रश्न .1

सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए

1. गुरू का उपदेश सौन्दर्य के बिना बनाया गया क्या है

क. दिवस ख. आभूषण ग. विद्युत घ. विनय

2. मिथ्याभिमान के उन्माद को उत्पन्न करने वाली है

क. सरस्वती ख. पार्वती ग. लक्ष्मी घ. उर्वशी

रिक्त स्थान की पूर्ति करें -

3. न प्रमाणी .... करोति।

4. क्वचिदपि .... पदम्।

एक शब्द में उत्तर दीजिए

5. सूर्य की गति में अनेक राशियों में क्या होती है

6. उदार मन वाले को अमंगल जैसा कौन मानता है

दिवसकरगतिरिव प्रकटित - विविध - संक्रान्तिः, पातालगुहेव तमोबहुला, हिडिम्बेव भीमसाहसैकहार्यहृदया, प्रावृडिवा - चिरद्युतिकारिणी, दुष्टपिशाचीव दर्शितानेकपुरुषोच्छ्राया स्वल्पसत्त्वुन्मत्तीकरोति । सरस्वतीपरिगृहीतमीर्ष्ययेव नालिङ्गति। जनं गुणवन्तमपवित्रमिव न स्पृशति।

शब्दार्थ - दिवसकरगतिः इव = सूर्य की गति के समान। दिवस करोति इति दिवसकरः तस्य गति। प्रकटित-विविध-संक्रान्तिः = अनेक प्रकार की संक्रान्ति प्रकट करने वाली। सूर्य की जैसे विविध राशियों में संक्रान्ति होती है, वैसे लक्ष्मी भी एक से दूसरे के पास चली जाती है। समास का विग्रह दो प्रकार से होगा। सूर्यगति पक्ष में - विविधाः संक्रान्तयः विविधसंक्रान्तयः, प्रकटिताः विविधसंक्रान्तयः यथा तथाभूता। लक्ष्मी पक्ष में - प्रकटिताः विविधेषु जनेषु संक्रान्तिः यया सा। पातालगुहा इव = पाताल की गुफा के समान। पातालस्य गुहा। तमोबहुला = तम से भरी हुई। 1-गुहा पक्ष में-अन्धकार से भरी हुई - तमः बहुलं यत्र तथाभूता। 2- लक्ष्मी पक्ष में-तमोगुण के व्यापारों से भरी हुई। तमः बहुलं यस्यां सा। यहाँ भी श्लेषमूलक उपमा है। हिडिम्बा इव = हिडिम्बा नाम की राक्षसी के समान। भीमसाहसैकहार्यहृदया = भीम साहस से ही आकृष्ट होने योग्य हृदयवाली। भीम साहस के दो अर्थ होंगे - 1- भीम के साहस से (हिडिम्बा) 2- भीषण साहस से (लक्ष्मी)। प्रावृड् इव = वर्षा के समान। अचिर-द्युति-कारिणी = क्षण भर चमक दिखानेवाली। अचिराद्युतिः अचिरद्युतिः, तां करोति इति। दुष्ट - पिशाची इव = दुष्ट पिशाची के समान। दर्शितानेकपुरुषोच्छ्राया = अनेक पुरुषों का उच्छ्राय दिखाने वाली। उच्छ्राय का दो अर्थ होगा - अनेक पुरुषों के बराबर ऊँचाई दिखाने वाली। न एके अनेके। अनेके च ते पुरुषाः अनेकपुरुषाः, तेषाम् उच्छ्रायः अनेकपुरुषोच्छ्रायः, दर्शितः अनेकपुरुषोच्छ्रायः यया तथाभूता। लक्ष्मी के पक्ष में - उच्छ्रायः का अर्थ होगा उन्नति, समृद्धि। उच्छ्रायः - उत् + श्रि + घञ्। स्वल्पसत्त्वम् = दुर्बल चित्त वाले को। स्वल्पं सत्त्वं यस्य तथाभूतम्। उन्मत्तीकरोति = उन्मत्त, पागल बना देती है। पिशाची आतंकित कर पागल बना देती है और लक्ष्मी अनेक पुरुषों को ऊँचे पहुँचाकर उन्हें उन्मत्त कर देती है। सरस्वतीपरिगृहीतम् = सरस्वती द्वारा अपनाये गये पुरुष को सरस्वत्यापरिगृहीतः सरस्वतीपरिगृहीतः, तम्। ईर्ष्यया इव = मानो इर्ष्या से। यहाँ उत्प्रेक्षालंकार आरम्भ करते हैं। न आलिंगति = आलिङ्गन नहीं करती, नहीं अपनाती। गुणवन्तं जनम = गुणवान् व्यक्ति को। अपवित्रम् इव = अपवित्र व्यक्ति के समान। न स्पृशति = स्पर्श नहीं करती। गुणी व्यक्ति को अपवित्र जैसे मानते हुए उसका स्पर्श नहीं करती।

हिन्दी भावार्थ - सूर्य की गति में जैसे अनेक राशियों में संक्रान्ति होती है, वैसे ही यह अनेक पुरुषों के पास जाती रहती है। पाताल की गुफा जैसे तम अर्थात् अन्धकार से भरी होती है, वैसे तमोगुण के व्यापारों से भरी होती है। जैसे हिडिम्बा का हृदय भीमसेन के साहस के कार्य से आकृष्ट था, वैसे भीषण साहस के कार्यो से आकृष्ट होने योग्य हृदयवाली है। वर्षा के समान क्षण भर चमकने वाली है। दुष्टा पिशाची जैसे अनेक पुरुषों के बराबर ऊँचाई दिखाकर दुर्बल मनुष्य को उन्मत्त बना देती है, वैसे अनेक पुरुषों को समृद्धि की दशा में पहुँचाकर उन्हें उन्मत्त बना देती है। सरस्वती द्वारा अपनाये गये पुरुष को मानो ईर्ष्या के कारण गले नहीं लगाती। गुणवान् पुरुष

का अपवित्र के समान स्पर्श नहीं करती।

उदारसत्त्वममंगलमिव न बहु मन्यते। सुजनमनिमित्तमिव न पश्यति। अभिजातमहिमिव लंघयति। शूरं कण्टकमिव परिहरति । दातारं दुःस्वप्नमिव न स्मरति । विनीतं पातकिनमिव नोपसर्पति। मनस्विनमुन्मत्तमिवोपहसति। परस्परविरुद्धं चेन्द्रजालमिव प्रकटयति जगति निजं चरितम्। तथा हि । सततमूष्माणमुपजनयन्त्यपि जाड्यमुपजनयति। उन्नतिमादधानापि नीचस्वभावतामाविष्करोति।

शब्दार्थ - उदारसत्त्वम् = उदार मन वाले को, उदारं सत्त्वं यस्य तथाभूतम्। अमंगलम् = अमंगल, अशुभ के समान, न बहु मन्यते = आदर नहीं देती। सुजनम् = सज्जन को, शोभनः जनः सुजनः तम्। अनिमित्तम् इव = अपशकुन के समान, मानो वह अपशकुन हो। न निमित्तम् अनिमित्तम्। न पश्यति = नहीं देखती। अभिजातम् = उत्तम कुल के पुरुष को अहिम् इव = वह साँप हो ऐसा मानती हुई। लंघयति = लाँघ जाती है। शीघ्रता से दूर हट जाती है। शूरम् = वीर पुरुष को। कण्टकम् इव = मानो वह काँटा हो इस तरह से। परिहरति = बचाकर चलती है। दातारम् = दानशील पुरुष को। दुःस्वप्नम् इव = बुरे स्वप्न के समान। मानो वह कोई दुःस्वप्न हो। न स्मरति = याद नहीं रखती। विनीतम् = विनम्र पुरुष को, पातकिनम् इव = पातकी जैसा मानती हुई, घोर पापी समझती हुई। न उपसर्पति = समीप नहीं जाती। मनस्विनम् = मनस्वी पुरुष को। उन्मत्तम् इ = पागल जैसा मानकर। उपहसति = उस पर हँसती है। यहाँ उपमा या उत्प्रेक्षा अलंकार माना जा सकता है। अब विरोधाभास अलंकार का प्रयोग करते हुए लक्ष्मी के परस्पर विरोधी चरित्र का वर्णन करते हैं। विशेषण पदों पर श्लेष होने से दो - दो अर्थ होंगे। परस्परविरुद्धम् =परस्पर विरोध। परस्परं यथा स्यात् तथा विरूद्धम्। इन्द्रजालम् इव = जादू का खेल सा। दर्शयन्ती = दिखाती हुई दृश् + णिच् + शत् + ङीप्। जगति = संसार में। निज (परस्पर विरूद्धम्) चरितम् = अपने परस्पर विरोधी चरित को। प्रकटयति = प्रकट करती है। तथा हि = जैसे। सततम् = निरन्तर। ऊष्माणम् उपजनयन्ती अपि = ऊष्मा उत्पन्न करती हुई भी। ऊष्मा के दो अर्थ हैं गर्मी, उत्साह या धन के कारण अहंकार की गर्मी। जाड्ययम् उपजनयति = जाड्य को उत्पन्न करती है। जाड्य के दो अर्थ हैं - 1- ठंडक, 2- जड़ता, मूर्खता। निरन्तर गर्मी से युक्त होने पर भी ठंडक उत्पन्न करती है, यह अर्थ देने पर विरोध की प्रतीति होती है, किन्तु निरन्तर धन के कारण अहंकार की गर्मी देने के साथ जडता या मूर्खता उत्पन्न करती है यह अर्थ लेने पर विरोध का परिहार हो जाता है। उन्नतिम् आदधाना अपि = उन्नति प्रदान करती हुई भी

। उत् + नम् + क्तिन् । आदधाना- आ + धा + शानच् + टाप् । नीचस्वभावताम् आविष्करोति = नीचस्वभावता को प्रकट करती है । यहाँ भी विरोधाभास है । नीचस्वभावता का एक अर्थ होगा निम्न अवस्था या स्थिति, दूसरा अर्थ है नीचजनों का स्वभाव अर्थात् निकृष्ट आचरण । धन की समृद्धि होने पर व्यक्ति की उन्नति के साथ स्वभाव में नीचता भी आती है ।

हिन्दी भावार्थ - उदार मन वाले को अमंगल जैसा मानती हुई आदर नहीं देती । सज्जन को अपशकुन जैसे देखती तक नहीं । उच्च कुलीन को साँप जैसा मानती हुई लाँघ जाती है । वीर से काँटे की तरह परहेज करती है । दानशील का दुःस्वप्न के समान स्मरण नहीं करती । विनम्र पुरुष के पास उसे घोर पापी जैसा मानती हुई नहीं जाती । मनस्वी का इस प्रकार उपहास करती है मानो वह पागल हो । परस्पर विरुद्ध इन्द्रजाल जैसा दिखाती हुई जगत् में यह अपना परस्पर विरोधी चरित प्रकट करती है । निरन्तर ऊष्मा (गर्मी या उत्साह) देती हुई भी जाड्य (शीतलता या जड़ता) उत्पन्न करती है ।

तोयराशिसम्भवापि तृष्णां संवर्धयति । ईश्वरतां दधानाप्यशिवप्रकृतित्वमातनोति ।
बलोपचयमाहरन्त्यपि लघिमानमापादयति । अमृतसहोदरापि कटुकविपाका,
विग्रहवत्यप्यप्रत्यक्षदर्शना, पुरुषोत्तमरतापि खलजनप्रिया ।

शब्दार्थ - तोयराशिसंभवा अपि = जल की राशि से उत्पन्न होने पर भी । तोयस्य राशिः तोयराशिः, तस्मात् सम्भवः यस्याः सा । तृष्णां संवर्धयति = तृष्णा को बढ़ाती है । तृष्णा का अर्थ प्यस लेने पर विरोध की प्रतीति होती है कि जो जल की राशि समुद्र से उत्पन्न है व प्यास कैसे बढ़ा सकती है, किन्तु तृष्णा का अर्थ धन की चाह लेने पर परिहार हो जाता है । ईश्वरतां दधाना अपि = ईश्वरता प्रदान करती हुई भी । ईश्वर से यहाँ महादेव शिव का तात्पर्य है और प्रभुता, धन-सम्पत्ति, स्वामित्व का अर्थ भी । ईश्वरस्य भावः ईश्वरता । ईश्वर + तल् + टाप् । अशिवप्रकृतित्वम् आतनोति = अशिव प्रकृति की वृद्धि करती है । अशिव के दो अर्थ होंगे - शिव से भिन्न और अमंगलकारी, निन्दित कर्म करने का स्वभाव । एक अर्थ लेने पर विरोध की प्रतीति होती है, दूसरा अर्थ लेने पर उसका परिहार हो जाता है । बलोपचयम् आहरन्ती अपि = बल की वृद्धि लाती हुई भी । बल के दो अर्थ होंगे-सेना या धनसम्पत्ति की शक्ति और शारीरिक शक्ति । लघिमानम् आपादयति = हल्कापन ले आती है, उत्पन्न करती है । लघिमा के भी दो अर्थ होंगे 1- शरीर का हल्कापन या दुर्बलता, 2- क्षुद्रता या कृपणता । बल की वृद्धि करती हुई भी हल्कापन या दुर्बलता ले आती है अर्थ करने पर विरोध होगा, सेना की वृद्धि करने पर भी क्षुद्रता के व्यवहार या कृपणता को उत्पन्न करती है ऐसा अर्थ करने पर परिहार हो जायेगा । अमृतसहोदरा अपि = अमृत की सगी बहिन होते हुए भी । लक्ष्मी और अमृत समुद्र से उत्पन्न हैं, अतः लक्ष्मी अमृत की बहिन है। कटुकविपाक = कटु विपाक वाली है । कटु विपाक का एक अर्थ होगा कड़वे स्वाद वाली । यह अर्थ लेने पर विरोध की प्रतीति होती है । दूसरा अर्थ है 'दुःखदायी परिणाम देने वाली' यह अर्थ लेने पर परिहार हो जाता है । विग्रहवती अपि = विग्रह धारण करने वाली होने पर भी । अप्रत्यक्षदर्शना = प्रत्यक्ष न दिखायी देने वाली । विग्रह का एक अर्थ शरीर है और दूसरा अर्थ युद्ध । प्रथम अर्थ लेने पर विरोध होगा कि जो शरीर धारिणी है, वह

प्रत्यक्ष नहीं देखी जाती, किन्तु दूसरा अर्थ लेने पर विरोध नहीं रह जाता। पुरुषोत्तमरता अपि = पुरुषोत्तम में रत रहने वाली होने पर भी। पुरुषोत्तम =1- श्रेष्ठ पुरुषों में रत होने पर भी, 2- पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु में रत। खलजनप्रिया = खलों अर्थात् दुर्जनों को अपना प्रिय माननेवाली, उनसे प्रेम करने वाली।

हिन्दी भावार्थ- जल की राशि समुद्र से उत्पन्न होने पर भी तृष्णा को बढ़ाती है। ईश्वरता प्रदान करती हुई भी हल्कापन ले आती है। अमृत की सहोदरा होने पर भी कटु विपाक वाली होती है। विग्रह (शरीर) वाली होने पर भी प्रत्यक्ष न दिखायी देने वाली होती है। पुरुषोत्तम में रत होने पर भी खल जन से प्रेम करने वाली है।

रेणुमयीव स्वच्छमपि कलुषीकरोति । यथायथा चेयं चपला दीप्यते तथातथा दीपशिखेव कज्जलमलिनमेव कर्म केवलमुद्वमति। तथा हि । इयं संवर्धनवारिधारातृष्णाविषवल्लीनाम्, व्याधगीतिरिन्द्रियमृगाणाम्, परामर्शधूमलेखा सच्चरितचित्राणाम्, विभ्रमशय्या मोहदीर्घनिद्राणाम्, निवास- जीर्ण- वलभी धन - मद- पिशाचिकानाम्।

शब्दार्थ - रेणुमयी इव = धूलि की बनी हुई के समान, धूलि के समान। स्वच्छम् अपि कलुषीकरोति = निर्मल पदार्थ को भी कलुषयुक्त बनाती है। अकलुषं कलुषं सम्पद्यमानं करोति इति। कलुष + कृ + च्वि + लट् निर्मल चित्त वाले को भी दूषित विचार से कलुषित करती है। यथा यथा च इयं चपला दीप्यते = जैसे जैसे यह चंचला दीप्त होती है, बढ़ती है। तथा तथा दीपशिखा इव = वैसे वैसे दीपशिखा के समान, दीपक की लौ के समान। केवलं कज्जलमलिनम् एव कर्म उद्वमति = केवल काजल के समान कलुषित कर्म ही कराती है। जैसे दीपक की लौ उतना ही अधिक काजल के रूप में काला बनाने का काम करती है। कज्जलम् एव मलिनं कर्म-दीपशिखा के पक्ष में। कज्जलवत् मलिनं कर्म-लक्ष्मी के पक्ष में। तथाहि = क्योंकि। इयम् = यह लक्ष्मी। संवर्धन- वारि - धारा = पूर्ण रूप में बढ़ाने वाली जल की धारा है। लक्ष्मी पर वारिधारा का आरोप है। वारिणः धारा वारिधारा, संवर्धने वारिधारा संवर्धनवारिधारा। तृष्णा विषवल्लीनाम् = तृष्णा रूपी विष की लताओं के लिए। तृष्णा = विषयसुखों को भोगने की इच्छा विषस्य वल्ल्यः, तृष्णा एवं विषवल्ल्यः, तृष्णाविषवल्ल्यः, तासाम्। व्याधगीतिः = व्याधो की गीति है। मृगों को फँसाने के लिए बहेलियों द्वारा गाया जाने वाला संगीत है। व्याधानां गीतिः। इन्द्रियमृगाणाम् = इन्द्रिय रूपी मृगों के लिए। इन्द्रियाणि एव मृगाः इन्द्रियमृगाः, तेषाम्। तात्पर्य यह है कि लक्ष्मी इन्द्रियों को मधुर ढंग से फुसलाकर विषयों में फँसा देती है जिससे पुरुष विनाश को प्राप्त होता है। परामर्शधूमलेखा = मलिन करने वाली धुएँ की पंक्ति है। परामर्शाय धूमलेखा परामर्शधूमलेखा। परामर्श = ढँक देना, मलिन बना देना। सच्चरितचित्राणाम् = सज्जनों के चरित्र रूपी चित्रों के लिए। सन्ति चरितानि एव चित्राणि सच्चरितचित्राणि, तेषाम्। लक्ष्मी सज्जनों के चरित्र को धुँएकी लेखा के समान ढँक देती है, मलिन कर देती है। विभ्रमशय्या = विलास की शय्या है। मोह - दीघ्र - निद्राणाम् = मोह रूपी दीर्घ निद्राओं की। मोह एवं दीर्घा निद्रा, मोहदीर्घनिद्रा, तासाम्। तात्पर्य यह है कि लक्ष्मी की

कृपा प्राप्त कर लेने वाले मोह या विवेकहीनता की लम्बी नीदों में पड़े रहते हैं। मोह पर दीर्घनिद्रा का आरोप - रूपकालंकार । निवास - जीर्ण - वलभी = रहने की टूटी अटारी है । धनमदपिशाचिकानाम् = धन के अहंकार रूपी पिशाचियों के लिए । धनस्य मदः धनमः, धनमदाः एव पिशाचिकाः धनमदपिशाचिकाः, तासाम् । धनमद पर पिशाचिका का आरोप होने से रूपकालंकार है । धन का अहंकार अनेक रूपों में प्रकट होता है और पिशाचियों के समान कार्य कराता है।

हिन्दी भावार्थ- धूलि से भरी हुई के समान निर्मल को भी कलुषित कर देती है। जैसे-जैसे यह चंचला प्रदीप्त होती है, वैसे - वैसे दीपक की लौ के समान केवल काजल की कालिमा जैसे कर्म ही प्रेरित करती है और भी । यह (धन की) तृष्णा रूपी विष की लताओं के लिए पूर्ण रूप से बढ़ाने वाली जल की धारा है । इन्द्रिय रूपी मृगों को फँसाने के लिए बहेलिए का संगीत है । सज्जनों के चरित्र रूपी चित्रों को मलिन करने वाली धूमलेखा है। मोह की लम्बी निद्रा के लिए विलास की शय्या है। धन के अहंकार रूपी पिशाचियों के लिए निवास की टूटी अटारी है।

तिमिरोद्गतिः शास्त्रदृष्टीनाम्, पुरःपताका सर्वाविनयानाम्, उत्पत्तिनिम्नगा क्रोधावेगग्राहाणाम्, आपानभूमिर्विषयमधूनाम्, संगीतशाला भ्रूविकारनाट्यानाम्, आवासदरी दोषाशीविषाणाम्, उत्सारणवेत्रलता सत्पुरुषव्यवहाराणाम्, अकालप्रावृड् गुणकलहंसकानाम्, विसर्पणभूमिर्लोकापवादविस्फोटकानाम्।

शब्दार्थ - तिमिरोद्गतिः = तिमिर रोग की वृद्धि है । तिमिर नेत्ररोग है । तिमिरस्य उद्गतिः। शास्त्रदृष्टीनाम् = शास्त्र रूपी दृष्टियों के लिए। शास्त्राणि एव दृष्टयः शास्त्रदृष्टयः, तासाम्। तात्पर्य है कि लक्ष्मी या धन सम्पत्ति प्राप्त हो जाने पर शास्त्र ज्ञान की दृष्टि से दिखायी नहीं पड़ता। वह ज्ञान व्यर्थ हो जाता है । शास्त्र पद दृष्टि का आरोप-रूपकालंकार । पुरःपताका = आगे चलने वाली पताका है। सर्वाविनयानाम् = सभी प्रकार के अविनय या उच्छृंखलाओं की। पताका का तात्पर्य चिह्न या प्रेरणा देने वाली। सर्वे च ते अविनयाः सर्वाविनया, तेषाम्। उत्पत्तिनिम्नगा = उत्पत्ति की नदी है। निम्नगा = नदी, निम्नं यथा स्यात् तथा गच्छति इति। क्रोधावेगग्राहाणाम् = क्रोधावेश रूपी ग्राहों के लिए। क्रोधस्य आवेगाः क्रोधावेगाः, ते एव ग्राहाः, तेषाम्। लक्ष्मी या धन- सम्पत्ति के कारण ही क्रोध के आवेग उठते हैं। क्रोधावेग पर ग्राह का आरोप होने से रूपकालंकार । आपानभूमिः = पीने का स्थान, मधुशाला । आपानस्य भूमिः आपानभूमिः। विषयमधूनाम् = विषय रूपी मदिरा की। विषयाः एव मधूनि, तेषाम्। भोग के पदार्थों पर मधु का आरोप होने से रूपकालंकार है। संगीतशाला = संगीतशाला है। भ्रूविकारनाट्यानाम् = भौहों के विकार रूपी अभिनय का। भ्रुवोः विकाराः भ्रूविकाराः, ते एव नाट्ययानि, तेषाम्। लक्ष्मी से सम्पन्न लोगों की भौहें अनेक भंगिमायें दिखाती हैं, प्रायः चढ़ी रहती हैं। आवासदरी = आवास की कन्दरा है । आवासस्य दरी। दोषाशीविषाणाम् = दोषों रूपी सर्पों की । दोषाः एव आशीविषाः, तेषाम्। दोषों पर सर्पों का आरोप होने से - रूपक अलंकार। उत्सारणवेत्रलता = हटाने के लिए बेंत की छड़ी है। वेत्रस्य लता वेत्रलता, उत्सारणाय वेत्रलता । सत्पुरुषव्यवहाराणाम् = सज्जनों के व्यवहारों के लिए। सन्त् पुरुषाः सत्पुरुषाः, तेषां व्यवहाराः

सत्पुरुषव्यवहाराः तेषाम्। अकालप्रावृङ् = असमय की वर्षा ऋतु है । अकाले प्रावृट् । गुणकलहंसानाम् = गुण रूपी कलहंसों के लिए। श्रेष्ठ हंसों को कलहंस कहते हैं । वर्षा में वे मानसरोवर चले जाते हैं । असमय की वर्षा में उन्हें बहुत कष्ट उठाना पड़ता है । गुणाः एव कलहंसाः गुणकलहंसाः, तेषाम् । गुण पर कलहंस का आरोप - रूपकालंकार । विसर्पणभूमिः = फैलने का स्थान है । विसर्पणस्य भूमिः। वि + सृप् + ल्युट् । लोकापवादविस्फोटकानाम् = लोकनिन्दा रूपी विस्फोटक रोग का । लोके अपवादाः, ते एव विस्फोटकाः लोकापवादविस्फोटकाः । विस्फोटक रोग फोड़ेवाली खुजल का एक रूप है। लोकापवाद पर विस्फोटक का आरोप – रूपक ।

हिन्दी भावार्थ - शास्त्र रूपी दृष्टि के लिए तिमिर रोग की वृद्धि है । सभी प्रकार के अविनयों के आगे चलने वाली पताका है । क्रोधावेग रूपी ग्राहों की उत्पत्ति की नदी है । भोगपदार्थ रूपी मदिरा की मधुशाला है । भ्रूविकार रूपी अभिनय को सिखाने के लिए संगीतशाला है । (कामादि) दोष रूपी सर्पों के निवास की कन्दरा है । सत्पुरुषों के आचार को दूर करने के लिए बेंत की छड़ी है। गुणरूपी कलहंसों के लिए असमय की वर्षा ऋतु है। लोकापवाद रूपी विस्फोटक रोग के फैलने का स्थान है ।

प्रस्तावना कपटनाटकस्य, कदलिका कामकरिणः, वध्यशाला साधुभावस्य, राहुजिह्वा धर्मेन्दुमण्डलस्य । न हि तं पश्यामि यो ह्यपरिचितयानया न निर्भरमुपगूढः, यो वा न विप्रलब्धः। नियतमियमालेख्यगतापि चलति, पुस्तमय्यपीन्द्रजालमाचरति, उत्कीर्णापि विप्रलभते, श्रुताप्यभिसन्धत्ते, चिन्तितापि वञ्चयति।

शब्दार्थ - प्रस्तावना = प्रस्तावना है । नाटक के आरम्भ में प्रस्तावना नाम का अंश होता है, जिसमें कवि का परिचय और नाटक की घटनाओं की सूचना होती है । कपटनाटकस्य = कपट रूपी नाटक की । कपटम् एव नाटकम् कपटनाटकम्, तस्य । कपट पर नाटक का आरोप - रूपकालंकार है । कदलिका = केलों की पंक्ति है । कामकरिणः = काम रूपी हाथी की । कामः एव करी कामकरी । करः अस्य अस्ति इति करी । काम पर हाथी का आरोप है - रूपकालंकार । हाथी जैसे केलों की पंक्ति में इच्छानुसार उन्हें खाते हुए विहार करता है, वैसे धन - सम्पत्ति से सम्पन्न पुरुष के कामोपभोग के विलास बढ़ जाते हैं । वध्यशाला = वध करने के लिए पशुओं को रखने का स्थान है । वध्यानां प्राणिनां शाला । साधुभावस्य = सौजन्य का । साधोः भावः साधुभावः तस्य । लक्ष्मी की प्राप्ति सौजन्य को समाप्त कर देती है । राहुजिह्वा = राहु की जिह्वा है । राहोः जिह्वा राहुजिह्वा । धर्मेन्दुमण्डलस्य = धर्म रूपी चन्द्रमण्डल के लिए इन्दोः मण्डलम् इन्दुमण्डलम । धर्मः एव इन्दुमण्डलम् धर्मेन्दुमण्डलम्, तस्य धर्म पर चन्द्रमण्डल का आरोप होने से रूपकालंकार । जिस प्रकार राहु की जिह्वा चन्द्रमण्डल को ग्रस लेती है, उसी प्रकार लक्ष्मी धर्म को समाप्त कर देतजी है । तं न पश्यामि = ऐसे व्यक्ति को मैं नहीं देखता । यः = जो । अपरिचितया अनया = इस अपरिचिता के द्वारा । न परिचिता अपरिचिता, तया । न निर्भरम् उपगूढः = जिसका इसके द्वारा गाढ़ आलिंगन नहीं किया गया । उप + गुह् + क्त । निर्भर यथा स्यात् तथा । यः वा न विप्रलब्धः = और जिसे धोखा नहीं दिया गया । विप्र + लभ्ःक्त ।

नियतम् = निश्चय ही। इयम् = यह लक्ष्मी। आलेख्यगता अपि चलति = चित्र में अंकित होने पर भी चलती है अर्थात् चली जाती है। पुस्तमयी अपि = मिट्टी की मूर्ति के रूप में भी। इन्द्रजालम् आचरति = इन्द्रजाल या जादू कर देती है। उत्कीर्णा अपि = खोद कर बनायी गयी भी। पत्थर या लकड़ी पर तराशी गयी भी। विप्रलभते = धोखा देती है। श्रुता अपि = उसके विषय में सुनने पर भी। अभिसन्धते = ठगती है। चिन्तिता अपि = सोचने पर भी। वंचयति = विश्वासघात करती है।

हिन्दी भावार्थ- कपट रूपी नाटक की प्रस्तावना है। काम रूपी हाथी के लिए केलों की पंक्ति है। सौजन्य की वध्यशाला है। धर्म रूपी चन्द्रमण्डल के लिए राहु की जिह्वा है। मैं ऐसा किसी को नहीं देखता जिसका इसने कसकर आलिंगन किया हो और जिसे फिर धोखा न दिया हो। निश्चय ही, यह चित्र में अंकित होने पर भी चल देती है, मिट्टी की मूर्ति के रूप में होने पर भी इन्द्रजाल सी माया फैलाती है, तराश कर उकेरी गयी भी धोखा देती है, सुनने पर भी ठगती है, सोचने पर भी वंचना करती है।

अभ्यास प्रश्न 2

सही विकल्प चुनकर उत्तर दीजिए

1. कॉटे के समान लक्ष्मी किससे बच कर चलती है

क. वीर ख.सपेरा ग. जादूगर घ. कायर

2. शास्त्र रूपी दृष्टि के लिए लक्ष्मी क्या है

क. श्वयथु ख.तिमिर क्षेत्र ग. हल्का घ. गुरू

रिक्तस्थन की पूर्ति करें

3. पुरूषोत्तम रतापि.. ।

4. लक्ष्मी सभी अविनयों के आगे चलने वाली ....है।

अति लघु - उत्तरीय प्रश्न

1- सूर्य की गति में अनेक राशियों में क्या होता है ?

2- लक्ष्मी किस मन वाले को अमंगल जैसा मानती हुई आदर नहीं देती है ?

3- लक्ष्मी किससे काँटे की तरह परहेज करती है ?

4- लक्ष्मी किसका दुःस्वप्न के समान स्मरण नहीं करती हैं ?

5- किससे सम्पन्न पुरुष के कामोपभोग के विलास बढ़ जाते हैं ?

3. 4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि सूर्य की गति में जैसे अनेक राशियों में संक्रान्ति होती है, वैसे ही यह लक्ष्मी अनेक पुरुषों के पास जाती रहती है। पाताल की गुफा जैसे तम अर्थात् अन्धकार से भरी होती है, वैसे तमोगुण के व्यापारों से भरी होती है। जैसे हिडिम्बा का हृदय भीमसेन के साहस के कार्य से आकृष्ट था, वैसे भीषण साहस के कार्यों से आकृष्ट होने योग्य

हृदयवाली है। वर्षा के समान क्षण भर चमकने वाली है। दुष्टा पिशाची जैसे अनेक पुरुषों के बराबर ऊँचाई दिखाकर दुर्बल मनुष्य को उन्मत्त बना देती है, वैसे अनेक पुरुषों को समृद्धि की दशा में पहुँचाकर उन्हें उन्मत्त बना देती है। सरस्वती द्वारा अपनाये गये पुरुष को मानो ईर्ष्या के कारण गले नहीं लगाती । गुणवान् पुरुष का अपवित्र के समान स्पर्श नहीं करती। सज्जन को अपशकुन जैसे देखती तक नहीं। उच्च कुलीन को साँप जैसा मानती हुई लाँघ जाती है । वीर से काँटे की तरह परहेज करती है। दानशील का दुःस्वप्न के समान स्मरण नहीं करती । विनम्र पुरुष के पास उसे घोर पापी जैसा मानती हुई नहीं जाती। वह मनस्वी का इस प्रकार उपहास करती है मानो वह पागल हो। परस्पर विरुद्ध इन्द्रजाल जैसा दिखाती हुई जगत् में यह अपना परस्पर विरोधी चरित प्रकट करती है। पन: निरन्तर ऊष्मा (गर्मी या उत्साह) देती हुई भी जाड्य (शीतलता या जड़ता) उत्पन्न करती है। यह (धन की) तृष्णा रूपी विष की लताओं के लिए पूर्ण रूप से बढ़ाने वाली जल की धारा है। इन्द्रिय रूपी मृगों को फँसाने के लिए बहेलिए का संगीत है। सज्जनों के चरित्र रूपी चित्रों को मलिन करने वाली धूमलेखा है। इतना ही नहीं मोह की लम्बी निद्रा के लिए विलास की शय्या है। धन के अहंकार रूपी पिशाचियों के लिए निवास की टूटी अटारी है। सभी प्रकार के अविनयों के आगे चलने वाली पताका है। क्रोधावेग रूपी ग्राहों की उत्पत्ति की नदी है। भोगपदार्थ रूपी मदिरा की मधुशाला है। भ्रूविकार रूपी अभिनय को सिखाने के लिए संगीतशाला है। (कामादि) दोष रूपी सर्पों के निवास की कन्दरा है। सत्पुरुषों के आचार को दूर करने के लिए बेंत की छड़ी है। गुणरूपी कलहंसों के लिए असमय की वर्षा ऋतु है। धर्म रूपी चन्द्रमण्डल के लिए राहु की जिह्वा है। मैं ऐसा किसी को नहीं देखता जिसका इसने कसकर आलिंगन किया हो और जिसे फिर धोखा न दिया हो। निश्चय ही, यह चित्र में अंकित होने पर भी चल देती है, मिट्टी की मूर्ति के रूप में होने पर भी इन्द्रजाल सी माया फैलाती है, तराश कर उकेरी गयी भी धोखा देती है, सुनने पर भी ठगती है, आदि। अत: इस आधार पर आप लक्ष्मी की अन्य गतिविधियों को भी व्याख्यायित कर सकेंगे।

3.5 शब्दावली

शब्द	**अर्थ**
वध्यशाला	वध करने के लिए पशुओं को रखने का स्थान है।
साधुभावस्य	सौजन्य का।
राहुजिह्वा	राहु की जिह्वा है।
धर्मेन्दुमण्डलस्य	धर्म रूपी चन्द्रमण्डल के लिए।
तं न पश्यामि	ऐसे व्यक्ति को मैं नहीं देखता।
न निर्भरम् उपगूढः	जिसका इसके द्वारा गाढ़ आलिंगन नहीं किया गया
यः वा न विप्रलब्धः	और जिसे धोखा नहीं दिया गया।
नियतम्	निश्चय ही।
इयम्	यह लक्ष्मी।

आलेख्यगता अपि चलति	चित्र में अंकित होने पर भी चलती है
पुस्तमयी अपि	मिट्टी की मूर्ति के रूप में भी।
इन्द्रजालम् आचरति	इन्द्रजाल या जादू कर देती है।
उत्कीर्णा अपि	खोद कर बनायी गयी भी।
विप्रलभते	धोखा देती है।
श्रुता अपि	उसके विषय में सुनने पर भी।
अभिसन्धते	ठगती है।
चिन्तिता अपि	सोचने पर भी।
वंचयति	विश्वासघात करती है।

3.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1.

1. ख 2. ग 3. लक्षणं 4. निर्भरमाबध्नाति

अभ्यास प्रश्न 2.

1. क 2. ख 3. खलजनप्रिय: 4. पताका

अति लघु - उत्तरीय प्रश्न -

(1) संक्रान्ति (2) उदार मन वाले को
(3) वीर से (4) दानशील का (5) धन- सम्पत्ति से सम्पन्न

3. 6 सदर्भ ग्रन्थ सूची

1 - ग्रन्थ नाम लेखक प्रकाशक
कादम्बरी बाणभट्ट चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी
3 - संस्कृत साहित्य का इतिहास . बलदेव उपाध्याय प्रकाशक शारदा निकेतन वी, कस्तूरवानगर सिगरा वाराणसी

3. 7 उपयोगी पुस्तकें

1- ग्रन्थ नाम लेखक प्रकाशक
शिवराजविजय अम्बिकादत्तव्यास चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

3. 8 निबन्धात्मक प्रश्न

1- इसका हिन्दी में अर्थ लिखिये अथवा व्याख्या कीजिए ?
प्रस्तावना कपटनाटकस्य, कदलिका कामकरिणः, वध्यशाला साधुभावस्य, राहुजिह्वा धर्मेन्दुमण्डलस्य। न हि तं पश्यामि यो ह्यपरिचितयानया न निर्भ्झरमुपगूढः, यो वा न विप्रलब्धः। नियतमियमालेख्यगतापि चलति,पुस्तमय्यपीन्द्रजालमाचरति,उत्कीर्णापिविप्रलभते, श्रुताप्यभिसन्धत्ते, चिन्तितापि वञ्चयति।

इकाई4. एवंविधयापि....................सर्वजनस्योपहास्यता मुपयान्ति तक व्याख्या

इकाई की रूप रेखा

4.1 प्रस्तावना

संस्कृत गद्य साहित्य से सम्बन्धित खण्ड तीन की यह चौथी इकाई है। इसके माध्यम से आप जानेंगें कि चँवरों की वायु से सत्यवादिता उड़ा दी जाती है। मानो बेंत के डण्डों से गुणों को भगा दिया जाता है, मानो जय- जयकार के शब्दों के कोलाहल से हितकारी वचनों को तिरस्कृत कर दिया जाता है, ध्वज के वस्त्र की छोरों से यश को मानो पोंछ दिया जाता है , और भी।

कुछ राजापरिश्रम से थके पक्षी की ग्रीवाविवर के समान चंचल, जुगनू की चमक के समान क्षण भर को मनोहर लगने वाली और मनस्वियों द्वारा निन्दित सम्पत्तियों से प्रलोभित होते हैं, धन के अल्प अंश को पाने से उत्पन्न अहंकार के कारण जन्म को भूल जाते हैं, अनेक दोषों के बढ़ जाने से दूषित रक्त के समान, काम आदि अनेक दोषों की वृद्धि के कारण भोगेच्छा की अभिलाषा के आवेश से पीडित रहते हैं।

अत: इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप यह बता सकेंगे कि शुकनास ने चन्द्रापीड को महत्त्व पूर्ण बातों का उपदेश दिया।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- दुराचारिणी द्वारा भाग्यवश अपनाये गये राजा व्याकुल हो जाते हैं। इस तथ्य की व्याख्या कर सकेंगे।
- अभिषेक के समय ही मानो मंगलकलशों के जल से उदारता धो दी जाती है, इसे समझायेंगे।
- छत्र के मण्डल से परलोक की दृष्टि दूर कर दी जाती है इसके विषय बतायेंगे।
- मन्त्रों द्वारा मानो उनमें प्रेतात्माओं का प्रवेश करा दिया जाता है, इसकी पुष्टि करेंगे।
- इस इकाई से प्राप्त शिक्षाओं का उल्लेख करेंगे।

4.3 एवंविधयापि - सर्वजनस्योपहास्यतामुपयान्ति तक व्याख्या

एवंविधयापि चानया दुराचारया कथमपि दैववशेन परिगृहीता विक्लवाः भवन्ति राजानः, सर्वाविनयाधिष्ठानतां च गच्छन्ति। तथा हि । अभिषेकसमय एव चैतेषां मङ्‌लकलशजलैरिव प्रक्षाल्यते दाक्षिण्यम्, अग्निकार्यधूमेनेव मलिनीक्रियते हृदयम्, पुरोहितकुशाग्रसम्मार्जनीभिरिवापह्रियते क्षान्तिः, उष्णीषपट्टबन्धेनेवाच्छाद्यते जरागमनस्मरणम्, आतपत्रमण्डलेनेवापसार्यते परलोक - दर्शनम्।

शब्दार्थ - एवंविधया अपि = इस प्रकार की (वंचनापरायणा) होने पर भी, एवं विधा यस्याः सा, तया। अनया दुराचारया = इस दुराचारिणी के द्वारा। कथमपि = जिस किसी प्रकार। दैववशेन = भागय से, संयोग से। दैवस्य वशेन। परिगृहीता = ग्रहण किये गये, कृपा पात्र बनाये गये। राजानः

= राजागण । विक्लवाः भवन्ति = व्याकुल हो जाते हैं । सर्वाविनयाधिष्ठानतां च गच्छन्ति = और सभी प्रकार के अविनय के अधिष्ठान या घर बन जाते हैं । अधिष्ठीयते यत् अधिष्ठानम्- अधिष्ठानस्य भावः अधिष्ठानता । सर्वे च ते अविनयाः सर्वाविनयाः, तेषाम् अधिष्ठानता, ताम् । अभिषेकसमये एव = राज्याभिषेक के समय ही । अभिषेकस्य समयः अभिषेकसमयः, तस्मिन् । एतेषाम् = इन राजाओं के । दाक्षिण्यम् = उदारता, शालीनता। दक्षिणस्य भावः दाक्षिण्यम्। दक्षिण+ष्यञ्। मङ्गलकलशजलैः इव = मानो मंगल कलशों के जल से । मंगलाश्च ते कलशाश्च मंगलकलशाः। तेषां जलैः । यहाँ उत्प्रेक्षालंकार है । प्रक्षाल्यते = धो दी जाती है । अग्निकार्यधूमेन इव = मानो अग्नि कार्य होम आदि के धुएँ से । हृदयं मलिनीक्रियते = हृदय मलिन कर दिया जाता है, विकारयुक्त बना दिया जाता है । पुरोहित - कुशाग्र - सम्मार्जनीभिः = पुरोहित के कुशाग्र रूपी झाड़ू से । राज्याभिषेक के समय पुरोहित राजा में पवित्रता का आधान करने के लिए उसे कुश के गुच्छों से झाड़ता है । कुशानाम् अग्राणि कुशाग्राणि, पुरोहितस्य कुशाग्राणि पुरोहित-कुशाग्राणि, तानि एव सम्मार्जनयः, ताभिः। कुशाग्रों पर सम्मार्जनी का आरोप है। क्षान्तिः अपहियते = क्षमाशीलता निकालकर दूर कर दी जाती है । रूपक और उत्प्रेक्षा । उष्णीषपट्टबन्धेन इव = मानो रेशमी पगड़ी को बाँधने से उष्णीषम् एव पट्टम् उष्णीषपट्टम्, तस्य बन्धनेन । जरागमनस्मरणम् = वृद्धावस्था के आगमन की स्मृति । आच्छाद्यते = ढँक दी जाती है। वे भूल जाते हैं कि वे भी कभी वृद्ध होंगे। उष्णीष से वृद्धावस्था के आगमन का संकेत देने वाले केश ढँक दिये जाते हैं । आतपत्र - मण्डलेन इव = मानो छत्र के मण्डल से। परलोकदर्शनम् अपसार्यते = परलोक की दृष्टि हटा दी जाती है, दूर कर दी जाती है । आतपात् त्रायते इति आतपत्रम्, तस्य मण्डलेन । परश्च लोकश्च परलोकः, तस्य दर्शनम् । वह परलोक नहीं देखता ।

हिन्दी भावार्थ- इस प्रकार की इस दुराचारिणी द्वारा जिस किसी प्रकार भाग्यवश अपनाये गये राजा व्याकुल हो जाते हैं और सभी प्रकार की उच्छृंखलताओं के घर बना जाते हैं। और भी। अभिषेक के समय ही मानो मंगलकलशों के जल से उनकी उदारता धो दी जाती है, होमादि अग्निकार्य से हृदय मलिन बना दिये जाते हैं, पुरोहित के कुश के अग्रभाग रूपी सम्मार्जनी से क्षमाशीलता झाड़कर दूर फेंक दी जाती है, रेशमी पगड़ी के बाँधने से वृद्धावस्था आने की स्मृति ढँक दी जाती है, छत्र के मण्डल से परलोक की दृष्टि दूर कर दी जाती है ।

चामरपवनैरिवापहियते सत्यवादिता, वेत्रदण्डैरिवोत्सार्यन्ते गुणाः,जयशब्द कलकलरवैरिव तिरस्क्रियन्ते साधुवादाः, ध्वजपटपल्लवैरिव परामृश्यते यशः।तथा हि ।केचिच्छ्रमवशशिथिल-शकुनिगलपुट चटुलाभिः खद्योतोन्मेषमुहूर्त्तमनोहराभिः मनस्विजनगर्हिताभिः संपद्भिः प्रलोभ्यमाना धनलवलाभावलेप विस्मृत जन्मानोऽनेकदोषेपचितेन दोषासृजेव रागावेशेन बाध्यमानाः,

शब्दार्थ - चामरपवनैः इव = मानो चामरों की वायु से । चामराणां पवनैः, चामरपवनैः। सत्यवादिता अपहियते = सत्यवादिता दूर उड़ा दी जाती है । सत्यं वदति इति सत्यावादी, तस्य भावः सत्यवादिता । वेत्रदण्डैः इव = मानो बेंत के डण्डों से । वेत्रस्य दण्डाः, तैः। गुणाः उत्सार्यन्ते = गुण भगा दिये जाते हैं । जयशब्दकलकलैः इव = मानो जयकार शब्द के कोलाहलों से । जय

इति शब्दः जयशब्दः, तस्य कलकलैः। साधुवादाः = हितकारी वचन तिरस्कृत हो जाते हैं। इन सभी वाक्यों में उत्प्रेक्षालंकार है। ध्वज - पट- पल्लवैः इव = मानो ध्वज के वस्त्रों के आँचल से। यशः परामृश्यते = यश पोंछ दिया जाता है। दुष्कर्मों के कारण यश समाप्त हो जाता है। केचित् = कुछ राजा। श्रम-वश-शिथिल-शकुनि-गल-पुट-चटुलाभिः = परिश्रम के कारण थके पक्षी के गले के समान चंचल (सम्पद्भिः का विशेषण)। श्रमस्य वशेन शिथिलाः श्रमवशशिथिलाः। श्रमवशशिथिलाः ये शकुनयः तेषां यः गलःतस्य यत् पुटम्, श्रमवशशिथिलशकुनिगलपुटम्, तद्वत् चटुलाभिः। यहाँ लुप्तोपमा है। खद्योतोन्मेषमुहूर्त्त-मनोहराभिः = खद्योतों की चमक के समान क्षण भर को सुन्दर लगने वाली (सम्पद्भिः का विशेषण)। खे द्योतन्ते इति खद्योताः, तेषाम् उन्मेषः, खद्योतोन्मेषः, तद्वत् मुहूर्त्त मनोहराभिः। लुप्तोपमा है। मनस्विजनगर्हिताभिः = मनस्वी जनों द्वारा निन्दित। यह भी समपद्भिः का विशेषण है। प्रशस्तं मनः यस्य सः मनस्वी, मनस्विनश्च ते जनाः मनस्विजनाः, तैः गर्हिताभिः। गर्ह+क्त। सम्पद्भिः प्रलोभ्यमाना = सम्पत्तियों द्वारा लुभाये जाते हुए। उनके लोभ में पड़े हुए। धनलव - लाभावलेप- विस्मृत-जन्मानः = धन के अल्प अंश का लाभ पाकर अहंकार में जन्म को भूले हुए, स्वयं को अमर समझते हुए। धनस्य लवः धनलवः, तस्य यः लाभाः धनलवलाभः, तेन विस्मृतं जन्म यैः तथाभूताः। अनेक-दोषोपचितेन = अनेक दोषों के कारण बढ़े हुए। न एके इति अनेके, अनेके च ते दोषाः अनेकदोषाः, दुष्टासृजा इव = दूषित रक्त के समान। दुष्ट यत् असृक् दुष्टासृक्, तेन। वात, पित्त, कफ दोषों के बढ़ने से रक्त दूषित हो जाता है। रागावेशेन बाध्यमाना = राग के आवेश से पीड़ित रहने वाला। विषयभोगों की उत्कट इच्छा से सन्तप्त रहने वाले। रागस्य आवेशः रागावेशः, तेन बाध्यमानाः = बाध्+शानच् कर्म में। उन राजाओं में अनेक दोष बढ़ने से वे विषयभोग की उत्कट लालसा से बेचैन रहते हैं। रागावेश की उपमा दूषित रक्त से दी गयी है। उपमालंकार है। दोष के दो अर्थ होंगे - 1- राजाओं के पक्ष में-कामक्रोधादि दोष, 2- रक्त के पक्ष में - वात, पित्त कफ के दोष।

हिन्दी भावार्थ - चँवरों की वायु से मानो सत्यवादिता उड़ा दी जाती है। मानो बेंत के डण्डों से गुणों को भगा दिया जाता है, मानो जय-जयकार के शब्दों के कोलाहल से हितकारी वचनों को तिरस्कृत कर दिया जाता है, ध्वज के वस्त्र की छोरों से यश को मानो पोंछ दिया जाता है। और भी। कुछ राजापरिश्रम से थके पक्षी की ग्रीवाविवर के समान चंचल, जुगनू की चमक के समान क्षण भर को मनोहर लगने वाली और मनस्वियों द्वारा निन्दित सम्पत्तियों से प्रलोभित होते हैं, धन के अल्प अंश को पाने से उत्पन्न अहंकार के कारण जन्म को भूल जाते हैं, अनेक दोषों के बढ़ जाने से दूषित रक्त के समान, काम आदि अनेक दोषों की वृद्धि के कारण भोगेच्छा की अभिलाषा के आवेश से पीडित रहते हैं।

विविध-विषय-ग्रास-लालसैःपंचभिरप्यनेक-सहस्रसंख्यै-रिवेन्द्रियैरायास्यमानाः,प्रकृति चंचलतयालब्धप्रसरेणैकेनापिशतसहस्रतामिवोपगतेनमनसाकुलीक्रियमाणा विह्वलतामुपयान्ति । ग्रहैरिवगृह्यन्ते, भूतैरिवाभिभूयन्ते, मन्त्रैरिवावेश्यन्ते, सत्त्वैरिवावष्टभ्यन्ते।

शब्दार्थ - विविध-विषय-ग्रास-लालसैः विविध विषयों के भाग की लालसा से युक्तविविधाश्च ते विषयाः विविधविषयाः, तेषां ग्रासे लालसा येषां तानि, तै। (इन्द्रियैः का विशेषण)।ग्रासः- ग्रस्+घञ्। लालसः = लस्+यङ् लुक+अच् प्रत्यय। पंचभिः अपि अनेकसहस्रसंख्यैः इव इन्द्रियैः = पाँच होने पर भी मानो अनेक सहस्र संख्या वाली इन्द्रियों द्वारा । अनेकानि सहस्राणि संख्या येषां तानि, तैः। मानो पाँच ही इन्द्रियाँ कई हजार बन गयी हों । उत्प्रेक्षालंकार है । आयास्यमानाः = उद्योग के लिए प्रेरित किये जाते हुए आ+यस्+णिच्+शानच् । उनकी भोग की इच्छा इतनी बढ़ जाती है कि वे पाँच ही इन्द्रियों को कई हजार जैसे समझते हुए निरन्तर भोगों के लिए बेचैन रहते हैं, सन्तोष का अनुभव नहीं करते । प्रकृतिचंचलतया = स्वभाव से चंचल होने के कारण मन के विषय में कहते हैं कि मन स्वभाव से चंचल होता है । प्रकृत्या चंचलम् प्रकृतिचंचलम्, तस्य भावः, प्रकृतिचंचलता, तया। लब्धप्रसरेण = अवसर पाकर । लब्धः प्रसरः येन तथाभूतेन । प्र+सृ+अप् । एकेन अपि =एक होकर भी । शतसहस्रताम् उपगतेन इव = मानो सौ हजार बने हुए । उत्प्रेक्षा अलंकार, शतानि सहस्राणि शतसहस्राणि, तेषां भावः शतसहस्रता, ताम् । मनसा = मन से। आकुलीक्रियमाणा = आकुल बनाये जाते हुए । अनाकुलाः आकुलाः सम्पद्यमानाः क्रियमाणाः । आकुल + कृ+ च्वि + शानच् । विह्वलताम् उपयान्ति = छटपटाने लगते हैं । विह्वलस्य भावः विह्वलता, ताम् । ग्रहैः इव गृह्न्ते = मानो ग्रहों द्वारा पकड़ लिये जाते हैं । उनकी स्थिति कैसी हो जाती है, इसी का वर्णन कवि ने यहाँ उत्प्रेक्षालेकारों द्वारा किया है । भूतैः इव अभिभूयन्ते = मानो भूतों द्वारा अभिभूत कर लिये जाते हैं । मन्त्रैः इव आवेश्यन्ते = मानो मन्त्रों द्वारा आवेश में पहुँचा दिये जाते हैं । आभिचारिक मन्त्रों से मानो उनमें प्रेतात्माओं का प्रवेश करा दिया जाता है । सत्त्वैः इव = दुष्टात्माओं के द्वारा । अवष्टभ्यन्ते = निश्चेष्ट कर दिये जाते हैं ।

हिन्दी भावार्थ- वे अनेक विषयों के भोग की उत्कट चाह वाली, पाँच होने पर भी कई हजार बनी हुई सी इन्द्रियों द्वारा उद्योग के लिए प्रेरित किये जाकर, स्वभाव से चंचल होने के कारण और अवसर पाकर एक होने पर भी सैकड़ों, हजारों जैसे बने हुए मन से व्याकुल किये जाकर छटपटाने लगते हैं। वे मानो ग्रहों द्वारा पकड़ लिये जाते हैं, भूतों द्वारा अभिभूत कर लिये जाते हैं, मन्त्रों द्वारा मानो उनमें प्रेतात्माओं का प्रवेश करा दिया जाता है, दुष्टात्माओं द्वारा मानो निश्चेष्ट बना दिये जाते हैं ।

वायुनेव विडम्ब्यन्ते, पिशाचैरिव ग्रस्यन्ते, मदनशरैर्मर्माहता इव मुखभङ्गसहस्राणि कुर्वते, धनोष्मणा पच्यमाना इव विचेष्टन्ते, गाढ़ाप्रहारतहता इवाङ्गानि न धारयन्ति, कुलीरा इव तिर्यक्परिभ्रमन्ति, अधर्मभग्नगतयः पङ्गव इस परेण संचार्यन्ते मृषावाद-विपाक-संजात-मुखरोगा इवातिकृच्छ्रेण जल्पन्ति, सप्तच्छदतरव इव कुसुमरजोविकारैः पार्श्ववर्तिनां शिरःशूलमुत्पादयन्ति ।

शब्दार्थ - वायुना इव विडम्ब्यन्ते = मानो वायु के द्वारा हास्यास्पद बना दिये जाते हैं, अस्तव्यस्त बना दिये जाते हैं । पिशाचैः इव ग्रस्यन्ते = मानो पिशाचों से ग्रस लिये जाते हैं। मदनशरैः मर्माहताः इव = कामदेव के बाणों से मर्म पर आहत के समान। मदनस्य शराः मदनशराः, तैः। मर्मसु हताः मर्महताः। मृखभंग-सहस्राणि = सहस्रों प्रकार की मुख की भंगिमा प्रदर्शित करते हैं ।

मुखस्य भंगा: मुखभंगा:, तेषां सहस्राणि । मुख की भंगिमाएँ इस प्रकार दिखाते हैं जैसे कामदेव के बाणों से मर्माहत । धनोष्मणा पच्यमाना इव = धन की गर्मी से भुने जाते हुए के समान। धनस्य ऊष्मा धनोष्मा, तेन । विचेष्टन्ते = छटपटाते रहते हैं । गाढप्रहारहताः इव = गहरी चोट से पीटे गये के समान। गाढ़ाश्च ते प्रहाराः गाढप्रहाराः तैः हताः। अङ्गानि न धारयन्ति = अंगों को सम्भाल नहीं पाते, होश में नहीं रहते । कुलीराः इव = केकड़े के समान। तिर्यक् परिभ्रमन्ति = तिरछे चलते हैं। अधर्मभग्नगतयः = अधर्म के कारण (सत्कर्म की ओर) गति भग्न हो जाने से, पङ्गव इव = लंगड़ों के समान । परेण संचार्यन्ते = दूसरे के द्वारा चलाये जाते हैं । मन्त्री आदि सिकी अन्य के कहे अनुसार कार्य करते हैं । उपमा अलंकार है । मृषावाद-विपाक-संजात-मुखरोगा इव = मिथ्या या असत्य बोलने के फल के रूप में, जिनके मुख में रोग हो गया है, उनके समान । मृषावादस्य विपाकेन संजातः मुखस्य रोगः येषां तथाभूताः । अतिकृच्छ्रेण जल्पन्ति = बहुत कष्ट से बोलते हैं। यहाँ कवि ने इस प्रचलित विश्वास को संकेत किया है कि पूर्व जन्म के असत्य भाषण के कारण मुख के रोग होते हैं। राजा अहंकार के कारण किसी से बातें करना पसन्द नहीं करते। सप्तच्छदतरवः इव = जिस प्रकार सप्तच्छद के वृक्ष । कुसुम- रजो- विकारैः = अपने पुष्पों के पराग के विकास से, उग्र गन्ध से । उसी प्रकार राजागण अपने कुसुम = नेत्र के, रजोविकार = रजोगुण के विकार से । कुसुमानां रजः कुसुमरजः, तस्य विकारैः। कुसुम का दूसरा अर्थ नेत्र भी है। यहाँ श्लेष है । पार्श्ववर्तिनां शिरःशूलम् उत्पादयन्ति = समीप में रहने वालों के लिए सिर में शूल उत्पन्न कर देते हैं, उद्विग्न कर देते हैं ।

हिन्दी भावार्थ- मानो वायु के द्वारा उपहासास्पद बना दिये जाते हैं, मानो पिशाचों से ग्रस लिये जाते हैं। वे कामदेव के बाणों से मर्माहत हुए के समान सहस्रों प्रकार की मुख की भंगिमाएँ दिखाते हैं, धन की गर्मी से भुने जाते हुए के समान छटपटाते हैं, गहरी मार से पीटे गये के समान अपने होश में नहीं रहते, केकड़ों के समान तिरछे चलते हैं, अधर्म के कारण (सत्कर्म में) गति भग्न हो जाने से दूसरे द्वारा चलाये जाते हैं, मिथ्या भाषण के फल के रूप में उत्पन्न मुख के रोग वाले के समान बड़ी कठिनाई से बोलते हैं, जैसे ये राजा सप्तपर्ण वृक्ष के पुष्प-पराग की उग्र गन्ध से वैसे ही अपने नेत्रों के रजोगुणविकार से समीप रहने वालों के सिर में शूल उत्पन्न कर देते हैं ।

आसन्नमृत्यव इव बन्धुजनमपि नाभिजानन्ति, उत्कुपितलोचना इव तेजस्विनो नेक्षन्ते, कालदष्टा इव महामन्त्रैरपि न प्रतिबुध्यन्ते, जातुषाभरणानीव सोष्माणं न सहन्ते, तुष्टवारणा इव महामानस्तम्भनिश्चलीकृता न गृह्णन्त्युपदेशम्, तृष्णाविषमूर्च्छिता कनकमयमिव सर्वं पश्यन्ति ।

शब्दार्थ - आसन्नमृत्यवः इव = मरणासन्न लोगों के समान । आसन्नः मृत्युः येषां तथाभूताः। बन्धुजनम् अपि न अभिजानन्ति = अपने बन्धुजनों को भी नहीं पहचानते । बन्धुश्चासौ जनश्च बन्धुजनः, तम् । राजागण अहंकार के कारण अपने बन्ध-बान्धवों को नहीं पहचानते । उत्कुपितलोचनाः इव = जिनकी आँख आई हुई है, ऐसे लोगों के समान । उत्कुपिते लोचने येषां ते । तेजस्विनः न ईक्षन्ते = तेजस्वी या प्रतापी व्यक्तियों को नहीं देखते । जैसे जिसकी आँख आई

होती है, वह तेज युक्त सूर्य या दीपक के प्रकाश को नहीं देखता, वैसे ही तेजस्वी पुरुषों को नहीं देखना चाहते, उस पर दृष्टि नहीं ड़ालते । कालद्रष्टाः इव = विषैले सर्प से डँसे गये व्यक्तियों के समान, कालेन दष्टाः कालदष्टाः। महामन्त्रैः अपि = विष उतारने के बड़े मन्त्रों से होश में नहीं आते। राजाओं के पक्ष में अर्थ होगा - श्रेष्ठ मन्त्रणाओं से जागरूक होकर विवेक से कार्य नहीं करते। महान्तश्च मन्त्राश्च ते महामन्त्राः तैः । श्लेषमूला उपमालंकार । जातुषाभरणानि इव = लाख के आभूषणों के समान, जातुषः इमानि इति जातुषाणि। सोष्माणम् = ऊष्मा, गर्मी से युक्त अग्नि आदि पदार्थ को- लाख के आभूषण के पक्ष में। उत्साह सम्पन्न व्यक्तियों को-राजाओं के पक्ष पक्ष में। न सहन्ते = सहन नहीं करते । जैसे लाख के आभूषण तापयुक्त अग्नि आदि को सहन नहीं करते वैसे ही वे उत्साही व्यक्ति को सहन नहीं करते । दुष्टवारणाः इव = बिगड़ैल हाथियों के समान, दुष्टाश्चते वारणाः दुष्टवारणाः। महामानस्तम्भनिश्चलीकृता = 1- बड़े भारी खम्भों में बाँधकर जकड़े गये भी-हाथी के पक्ष में । महत् मानं यस्य तथाभूतः यः स्तम्भः महामानस्तम्भः। अनिश्चलाः निश्चलाः सम्पद्यमानाः कृताः निश्चलीकृता । महामानस्तम्भे निश्चलीकृता महामानस्तम्भनिश्चलीकृता । 2 - घोर अहंकार के कारण अकड़े हुए, -राजा के पक्ष में। महान् यः मानः महामानः, स एव स्तम्भः, तेन निश्चलीकृताः । उपदेशं न गृह्णन्ति = उपदेश को ग्रहण नहीं करते । 1- हाथी के पक्ष में- महावत के सिखाने को ग्रहण नहीं करते, 2- राजाओं के पक्ष में- हितोपदेष्टा गुरुजन के उपदेश को ग्रहण नहीं करते । श्लेषमूला उपमालंकार है । तृष्णाविषमूर्च्छिता = तृष्णा रूपी विष से मूर्च्छित बेहोश । तृष्णा = धन की न बुझने वाली प्यास, लालसा । तृष्णा पर विष का आरोप किया गया है, रूपकालंकार । तृष्णा एव विषं तृष्णाविषमृ, तेन मूर्च्छिता । सर्व कनकमयम् इव पश्यन्ति = सब कुछ कनकमय सा देखते हैं । कनकमय = सोने का, धनरूप में । जैसे विष से बेहोश व्यक्ति को सभी वस्तुएँ पीली दिखायी देती हैं ।

हिन्दी भावार्थ - मरणासन्न व्यक्तियों के समान वे अपने बन्धु - बान्धवों को नहीं पहचानते, जैसे जिनकी आँख आई हुई है, वे सूर्य आदि के तेज को नहीं देख पाते, वैसे ही वे तेजस्वी लोगों को नहीं देखते, विषैले सर्प से डँसे गये व्यक्ति जैसे बड़े प्रभावशाली मन्त्रों से भी होश में नहीं आते, वैसे ही वे बड़ों के हितकारी उपदेश से भी जागरूक नहीं होते, जैसे लाख के आभूषण ताप से युक्त (अग्नि आदि) को नहीं सहते, वैसे ही वे उत्साह सम्पन्न व्यक्ति को सहन नहीं करते हैं, जैसे बिगड़ैल हाथी बड़े भारी खम्भे में जकड़े गये भी (महावत के) सिखाने को नहीं ग्रहण करते, वैसे ही वे घोर अहंकार से जिद पर अड़े रहकर गुरुजनों के उपदेश को ग्रहण नहीं करते, तृष्णा रूपी विष से मूर्च्छित हुए वे सब कुछ स्वर्णमय सा देखते हैं ।

अभ्यास प्रश्न 1.

बहुविकल्पीय -

1. शुकनासोपदेश में दुराचारिणी किसे कहा है

क. पार्वती ख. लक्ष्मी ग. गंगा घ. उर्वशी

2. क्षान्ति का क्या अर्थ है -

क. क्षमाशील ख. शान्ति ग. क्रोध घ. उत्साह

रिक्त स्थान की पूर्ति करें -

3. भूतैरिव .... ।

4. मानो वायु के द्वारा .... बना दिये जाते है।

इषव इव पानवर्धिततैक्ष्ण्याः परप्रेरिता विनाशयन्ति, दूरस्थितान्यपि फलानि दण्डविक्षेपैः महत्कुलानि शातयन्ति, अकालकुसुमप्रसवा इव मनोहराकृतयोऽपि लोकविनाशहेतवः श्मशानाग्नय इवातिरौद्रभूतयः तैमिरिका इवादूरदर्शिनः।

शब्दार्थ - इषवः इव = बाणों के समान। पानवर्धिततैक्ष्ण्याः = 1- शान चढ़ाने से जिनका पैनापन बढ़ा हुआ है - बाणों के पक्ष में। 2- पान अर्थात् मदपान से जिनकी तीक्ष्णता अर्थात् निर्दयता, क्रूरता बढ़ी हुई है - राजाओं के पक्ष में। तीक्ष्णस्य भावः तैक्ष्ण्यम्, पानेन वर्धितं तैक्ष्ण्यं येषो ते। परप्रेरिताः विनाशयन्ति = 1- शत्रुओं के द्वारा चलाये गये प्राण ले लेते हैं- बाणों के पक्ष में। 2- दूसरे-मन्त्री या निकट रहने वाले सलाहकार द्वारा प्रेरित किये जाकर प्राण ले लेते हैं, नाश कर डालते हैं। श्लेषमूला उपमालंकार। दूरस्थितानि अपि फलानि = जैसे वृक्ष पर ऊँचे लगे हुए फलों को लोग दण्डविक्षेप = डण्डा फेंककर गिरा देते हैं, वैसे ही राजा लोग दूर पर रहने वाले उच्च कुलों का नाश कर देते हैं। दण्डविक्षेपैः = 1- डण्डा फेंककर, 2- दण्ड देकर या सेना को भेजकर। दण्डस्य विक्षेपैः। शातयन्ति = पीडित करते हैं, नष्ट कर देते हैं। अकाल - कुसुम - प्रसवाः इव = असमय में बिना ऋतु के निकलने वाले पुष्पों के समान। न कालः अकालः तस्मिन् कुसुमप्रसवाः इव। मनोहराकृतयः अपि = मनोहर आकृति की होने पर भी। मनसः हराः मनोहराः, मनोहराः आकृतयः येषां ते। लोकविनाश-हेतवः = संसार के नाश के द्योतक हैं, हेतु हैं। जैसे असमय में निकले हुए पुष्प सुन्दर होने पर भी लोक के नाश की सूचना देते हैं, वैसे ही वे सुन्दर आकृति के होने पर भी लोगों को पीड़ित करते हैं। श्लेषमूला उपमालंकार है। श्मशानाग्नयः इव = श्मशान की अग्नियों के समान। श्मशानस्य अग्नयः श्मशानाग्नयः। अतिरौद्रभूतयः = अति भयानक भूति वाले होते हैं। भूति पर श्लेष है, अतः दो अर्थ होंगे - 1- भस्म-श्मशान के अग्नि की भस्म, 2- राजाओं के पक्ष में समृद्धि, ऐश्वर्य। जिस प्रकार श्मशान के अग्नि की भस्म बहुत भयानक होती है, वैसे ही इन राजाओं के समृद्धि अतिशय भय देने वाली होती है। अतिशयेन रौद्रा भूतिः येषां ते। तैमिरिकाः इव = तिमिर नेत्ररोग से ग्रस्त व्यक्तियों के समान। तिमिरं संजातं येषां ते। तिमिर+ठक् प्रत्यय। अदूरदर्शिनः = अदूरदर्शी होते हैं। अदूरदर्शी के दो अर्थ होंगे- 1- दूर तक न देख सकने वाले-नेत्ररोगी के पक्ष में। 2- कार्य के परिणाम पर विचार न करने वाले-राजाओं के पक्ष में। श्लेषमूला उपमालंकार है। जिस प्रकार तिमिर रोग से ग्रस्त व्यक्ति दूर तक नहीं देख पाते, वैसे ही ये राजा किसी कार्य के परिणाम पर विचार नहीं करते। न दूरं यथा स्यात् तथा पश्यन्ति इति।

हिन्दी भावार्थ- जैसे शान चढ़ाने से बढ़े हुए पैनापन वाले बाण शत्रुओं द्वारा चलाये जाने पर प्राण ले लेते हैं, वैसे ही ये मदपान से और अधिक क्रूर होकर मन्त्री आदि दूसरों द्वारा उकसाये जाने पर प्राण ले लेते हैं। जैसे (वृक्ष पर) दूर पर लगे फलों को डण्डे मारकर गिरा दिया जाता है, वैसे ही ये दूर पर रहने वाले सम्भ्रान्त कुलों को भी दण्ड लगाकर या सेना भेजकर नष्ट कर देते हैं।

जैसे असमय में उत्पन्न पुष्प मनोहर आकृति के होने पर भी संसार के विनाश के हेतु होते हैं, वैसे ही ये सुन्दर रूप वाले होने पर भी प्रजा के विनाश के कारण होते हैं। जैसे श्मशान के अग्नि की भूति (= भस्म) अति भयावह होती है, वैसे ही इनकी भूति (= समृद्धि) भयावह होती है। ये

तिमिर नेत्ररोग को रोगी के समान अदूरदर्शी होते हैं।

उपसृष्टा इव क्षुद्राधिष्ठितभवनाः, श्रूयमाणा अपि प्रेतपटहा इवोद्वेजयन्ति, चिन्त्यमाना अपि महापातकाध्यवसाया इवोपद्रवमुपजनयन्ति, अनुदिवसापूर्यमाणाः पापेनेवाध्मातमूर्त्तयो भवन्ति, तदवस्थाश्च व्यसन-शत-शरव्यातामुपगता।

शब्दार्थ - उपसृष्टा इव = वेश्यागामी कामुक लोगों के समान। क्षुद्राधिष्ठित - भवना = 1- क्षुद्राओं अर्थात् वेश्याओं या क्षुद्र विट, चेट आदि द्वारा उनके घर अधिष्ठित रहते हैं। जिस प्रकार कामी पुरुषों के घर वेश्याएँ भरी रहती हैं, वैसे इन राजाओं के भवनों में वेश्याएँ और विट आदि क्षुद्र लोग भरे रहते हैं। क्षुद्रा का एक अर्थ वेश्या भी है। कुछ लोगों ने उपसृष्टा अर्थ किया है भूत-प्रेत से ग्रस्त। इसका समासविग्रह होगा 1- उपसृष्टाः के पक्ष में-क्षुद्राभिः अधिष्ठितं भवनं येषां ते। श्रूयमाणाः अपि = सुने जाते हुए भी, उनके विषय में या उनके आगमन के विषय में सुनायी पड़ने पर भी प्रेतपटहाः इव उद्वेजयन्ति = शवयात्रा में बजाये जाने वाले नगाड़े के समान उद्वेग उत्पन्न करते हैं। जिस प्रकार शवयात्रा के समय बजाये जाते हुए नगाड़े सुनने में उद्वेग उत्पन्न करते हैं, उसी प्रकार इन राजाओं के विषय में सुनायी पड़ने पर भी आतंक छा जाता है। श्लेषमूला उपमा। चिन्त्यमाना अपि = सोचे जाते हुए भी अर्थात् उनके विषय में सोचने पर भी। महापातकाध्यवसायाः इव = महापातक कर्म का निश्चय करने के समान। महत् च तत् पातकम्, तस्य अध्यवसायाः। उपद्रवम् उपजनयन्ति = अशान्ति या बेचैनी उत्पन्न कर देते हैं। जैसे ब्राह्मणवध आदि महापातक करने का उपक्रम करने पर विचार मात्र से ही मन में अशान्ति उत्पन्न हो जाती है, वैसे ही इन राजाओं के विषय में चिन्तन करने पर भी मन अशान्त हो जाता है। अनुदिवसापूर्यमाणाः पापेन इव = मानो प्रतिदिन पाप से भरे जाते हुए, दिवसे दिवसे इति अनुदिवसम्, अव्ययीभाव। यहाँ उत्प्रेक्षालंकार है। आध्मातमूर्त्तयः भवन्ति = फैली या फूली हुई मूर्ति वाले हो जाते हैं। आध्माताः मूर्त्तिः येषां तथाभूताः। मानो प्रतिदिन उनके भीतर जो पाप भरता जाता है, उससे उनका आकार फैल या फूल जाता है, जैसे किसी रबर के गुब्बारे या खिलौने में हवा भरी जाती है, वैसे-वैसे फूलता जाता है। तदवस्थाः च = इस प्रकार की दशा वाले ये। सा अवस्था येषां तथाभूताः। व्यसन-शत-शरव्यताम् उपगता = सैकड़ों दुर्व्यसनों के शिकार बनकर। व्यसनानां शतानि व्यसनशतानि, तेषां शरव्यता, ताम्। शरस्य लक्ष्यं शरव्यम्, तस्य भावः शरव्यता।

हिन्दी भावार्थ- जैसे कामी पुरुषों के घर वेश्याएँ बैठी होती हैं, वैसे ही इन राजाओं के भवन में क्षुद्र जन विद्यमान रहते हैं। जैसे शवयात्रा के नगाड़े सुने जाने पर उद्वेग उत्पन्न करते हैं, वैसे इनके विषय में सुनायी पड़ने पर आतंक फैल जाता है। जैसे महापातक कर्मों के प्रयास का चिन्तन करने पर भी मन में अशान्ति उत्पन्न हो जाती है, वैसे इनके विषय में सोचने पर भी मन

बेचैन हो उठता है । प्रतिदिन इनके भीतर भरते जा रहे पापों के कारण इनके शरीर रूपी मूर्ति फूलती जाती है। ऐसी दशा वाले वे सैकड़ों दुर्व्यसनों के शिकार बनकर।

वल्मीकतृणाग्रावस्थिति जलबिन्दव इव पतितमप्यात्मानं नावगच्छन्ति। अपरे तु स्वार्थनिष्पादनपरैर्धनपिशित-ग्रास-गृध्रैरास्थान-नलिनी-बकैर्द्यूतं विनोद इति, परदाराभिगमनं वैदग्ध्यमिति, मृगयां श्रम इति, पानं विलास इति, प्रमत्ततां शौर्यमिति, स्वदारपरित्यागमव्यसनितेति, गुरुवचनावधीरणम्

शब्दार्थ - वल्मीक - तृणाग्रावस्थिता = चींटी या दीमक की बाँमी की घास के अग्रभाग पर अटकी जल की बूँदों के समान, वल्मीकस्य तृणानि वल्मीकतृणानि तेषाम् अग्राणि, तेषु अवस्थिताः इति। पतित् अपि आत्मानं न अवगच्छन्ति = अपने को गिरा हुआ होने पर भी नहीं जान पाते। जिस प्रकार चींटी या दीमक की बाँमी की घास के अग्रभाग पर अटकी जल की बूँदों का गिरने पर पता ही नहीं चलता, वैसे ही ये राजा अनेक पाप कर्मों से पतित होने पर भी स्वयं को पतित नहीं मानते। अपरे तु = कुछ दूसरे राजा । इसका सम्बन्ध वाक्य के अन्त में आये हुए 'सर्वजनस्य उपहास्यताम् उपयान्ति' की क्रिया से है। स्वार्थनिष्पादनपरेः = अपने स्वार्थ की सिद्धि में लगे हुए। स्वस्य अर्थ स्वार्थः, तस्य निष्पादनम् स्वार्थनिष्पादनम्। स्वार्थनिष्पादनम् एवं परं येषां ते। धन-पिशित-ग्रास-गृध्रैः = धन रूपी मांस का ग्रास पाने के लिए गृध्रों के समान, धन पर पिशित = मांस का आरोप और धूर्तों पर गृध्रों का आरोप होने से रूपकालंकार है। धनम् एव पिशितं धनपिशितम् तस्य ग्रासे गृध्रः, तैः। आस्थान-नलिनी-बकैः = राजा की बैठक रूपी कमलिनी का आश्रय लेकर जमे हुए धूर्त बगुले। यहाँ आस्थान पर कमलिनी का और धूर्तों पर बकों का आरोप है, रूपकालंकार है। बगुले कमलिनी के पत्तों के पीछे छिपकर बैठे रहते हैं और वे जिस प्रकार मछलियों का शिकार करते हैं, वैसे धूर्त राजा की सभा में आश्रय लेकर अवसर पाकर धन लूटते रहते हैं। आस्थीयते अत्र इति आस्थानम्, आस्थानम् एवं नलिनी आस्थाननलिनी, तस्यां बकैः। द्यूतं विनोदः इति = जुए के व्यसन को विनोद बताते हुए, वि+नुद्+घञ्। परदाराभिगमनम् वैदग्ध्यम् इति = परस्त्रीगमन को चतुराई बताते हुए। परेषां दाराः परदाराः, तेषाम् अभिगमनम् परदारभिगमनम्। अभि + गम् + ल्युट्। मृगया श्रमः इति = शिकार को परिश्रम का कार्य या व्यायाम बताते हुए श्रमः = श्रम् + घञ्। पानं विलासः इति = मदपान को विलास या मनोरंजन बताते हुए , पा + ल्युट् । प्रमत्ततां शौर्यम् इति = असावधानी को बहादुरी बताते हुए प्रमत्तस्य भावः प्रमत्तता। प्र+ मद् + क्त = प्रमत्त। प्रमत्तस्य भावः प्रमत्तता। शूरस्य भावः शौर्यम् । शूर+ ष्यञ् । स्वदारपरित्यागम् अव्यसनिता इति = अपनी पत्नी के परित्याग को व्यसन का अभाव या दोष का अभाव बताते हुए, स्वस्य दाराणां परित्यागः स्वदारपरित्यागः तम्। परि + त्यज् + घञ्। व्यसन या दोष का अभाव है, वैराग्य का गुण है। गुरुवचनावधीरणम् = गुरुजनों के वचनों का तिरस्कार । गुरुणां वचनानि, गुरुवचनानि, तेषाम् अवधीरणम् ।

हिन्दी भावार्थ - बाँमी की घास के अग्र भाग पर गिरी जल की बूँदों के समान अपना पतित

होना नहीं जान पाते। कुछ दूसरे राजाओं को केवल अपने स्वार्थ साधने में तत्पर, धन रूपी मांस के टुकड़े को झपटने में गृध्र जैसे तथा राजसभा रूपी कमलिनी के पीछे (शिकार के लिए) छिपे बगुलों के समान धूर्त लोग यह समझाते हैं कि जुआ तो विनोद है, परस्त्रीगमन चतुराई है, शिकार खेलना व्यायाम है, मदपान करना मनोरंजन है, असावधानी वीरता है, अपनी पत्नी का परित्याग व्यसनहीनता है, गुरुजनों के वचन का तिरस्कार करना है।

अपरप्रणेयत्वमिति, अजितभृत्यतां सुखोपसेव्यत्वमिति, नृत्य-गीतवाद्यवेश्याभिसक्तिं रसिकतेति, महापराधानावकर्णनं महानुभावतेति, पराभवसहत्वं क्षमेति, स्वच्छन्दतां प्रभुत्वमिति, देवावमानं महासत्त्वतेति, बन्दिजनख्यातिं यश इति, तरलतामुत्साह इति, अविशेषज्ञतामपक्षपातित्वमिति, दोषानपि।

शब्दार्थ - अपरप्रणेयत्वम् इति = दूसरों के कहने पर न चलना। दूसरों के कहने पर चलना अपनी बुद्धि की कमी या अक्षमता को द्योतित करता है और मूर्खों का लक्षण माना गया है। प्रणेतुं योग्यः प्रणेयः, परैः प्रणेयः परप्रणेयः, तस्य भावः परप्रणेयत्वम् । प्रणेयः प्र + नी + यत् । अपरप्रणेयत्व का अर्थ होता है अपने विवेक से बिना किसी दूसरे प्रभावित हुए स्वतन्त्र कार्य करना। अजितभृत्यताम् = सेवकों को अपने वश में न रख पाने को। भर्तुं योग्याः भृत्याः, न जिताः भृत्याः येन सः अजितभृत्यः, तस्य भावः। सुखोपसेव्यत्वम् इति = सुखपूर्वक सेवा करने योग्य होना उपसेवितुं योग्यः उपसेव्यः, सुखेन उपसेव्यः सुखेपसेव्यः, तस्य भावः। उपसेव्य- उप+सेव्+ण्यत्। नृत्य-गीत-वाद्य-वेश्याभिसक्तिम् = नृत्य, गीत, वाद्य और वेश्या में आसक्ति को, नृत्यं च गीतं च वाद्यं च वेश्याश्च नृत्यगीतवाद्यवेश्याः तासु अभिसक्तिम्। अभि + संज् + क्तिन्। रसिकता इति = रसिकता या कलाप्रियता बताकर, महापराधानावकर्णनम्= बड़े अपराधों को न सुनना महानुभावता है। महापराधावकर्णनम पाठ भी है जिसका अर्थ होगा बड़े अपराधों को सुनने में रुचि लेना। महान्तश्च ते अपराधाः महापराधाः, तेषाम् अनाकर्णनम्। पराभवसहत्वम् = अपमान को सह लेना। सहते इति सह (सह्+अच्), पराभवस्य सहः पराभवसहः, तस्य भावः पराभवसहत्त्वम्। क्षमा इति = क्षमा के रूप में। स्वच्छन्तां प्रभुत्वम् इति = स्वच्छन्द आचरण को प्रभुत्व के रूप में। स्वः छन्दः यस्य सः स्वच्छन्दः, तस्य भावः स्वच्छन्दता, ताम्। प्रभोः भावः प्रभुत्वम्। देवावमानम् = देवों का सम्मान न करना, देवस्य अवमानं देवावमानम्। महासत्त्वता = महाशक्तिशालित्व है। महत् सत्त्वं यस्य सः महासत्त्वः तस्य भावः। बन्दि-जन-ख्यातिम् = बन्दिजनों, चारणों द्वारा किये गये स्तुतिगान को। बन्दिनश्च ते जनाः बन्दिजनाः, तेषां ख्यातिः, ताम्। ख्या+क्तिन्। यशः इति = यश है इस रूप में। तरलताम् उत्साहः इति = चंचलता को उत्साह के रूप में। तरलस्य भावः तरलता, ताम्। तरल + लत् + टाप्। अविशेषज्ञताम् अपक्षपातित्वम् इति = किसी के विषय में सही ज्ञान न होने को पक्षपातरहित होने के रूप में। किसी के गुण या अवगुण आदि विशेषताओं का ज्ञान न हो तो उसे पक्षपातरहित होना बताते हैं। विशेषं जानाति इति विशेषज्ञः, तस्य भावः विशेषज्ञता। पक्षे पतति इति पक्षपाती, न पक्षपाती इति अपक्षपाती, तस्य भावः अपक्षपातित्वम्। दोषान् अपि = इस प्रकार राजा के दोषों को भी धूर्त गुण के रूप में बखनते हैं, और राजा को मूर्ख बनाते हैं।

हिन्दी भावार्थः - किसी के सिखाने-पढ़ाने पर न चलना है, सेवकों को वश में न रख पाना सुख से सेवा करने योग्य होना है, नृत्य, गीत, वाद्य और वेश्या में आसक्ति होना कलाप्रियता या रसिकता है, बड़े अपराधों के विषय में न सुनना महानुभावता है, अपमान को सह लेना क्षमा है, मनमानी करना प्रभुता है, देवता का अपमान करना महान् शक्तिशालित्व है, बन्दिजनों की स्तुति ही यश है, चंचलता उत्साह है, किसी के विषय में विशेष न जानना निष्पक्षता है, इस प्रकार दोषों को भी।

गुणपक्षमध्यारोपयद्भिरन्तः स्वयमपि विहसद्भिः प्रतारणकुशलैर्धूर्तैरमानुषलोकोचिताभिः स्तुतिभिः प्रतार्यमाणा वित्तमदमत्तचित्ताः निश्चेतनतया तथैवेत्यात्मन्या-रोपितालीकाभिमानाः मर्त्यधर्माणोऽपि दिव्यांशावतीर्णमिव सदैवतमिवातिमानुषमात्मानमुत्प्रेक्षमाणाः प्रारब्धदिव्योचित-चेष्टानुभावाः सर्वजनस्योपहास्यतामुपयान्ति।

शब्दार्थ - गुणपक्षमध्यारोपयद्भिः = गुणों के वर्ग में आरोपित करने वाले, गुणों में गिनाने वाले (धूर्तैः का विशेषण) अन्तः = मन ही मन। स्वयम् अपि विहसद्भिः = स्वयं भी उन राजाओं के ऊपर हँसते रहने वाले। वि+हस्+शतृ। प्रतारणकुशलैः धूर्तैः = ठगने में कुशल धूर्तों द्वारा। प्रतारणे कुशलाः, तैः। प्रतारण = प्र+ तृ+ णिच् + ल्युट्। अमानुष - लोकोचिताभिः = मनुष्यों के विषय में घटित न हो सकने वाली स्तुतियों से छले जाते हुए, ठगे जाते हुए। मानुषाणाम् लोकानाम् उचिताः मानुषलोकोचिताः, न मानुषलोकोचिताः, अमानुषलोकोचिताः, ताभिः। प्र+तृ+णिच्+ शानच् कर्म में। वित्तमदमत्तचित्ताः = धन के मद से मतवाले चित्त वालें वित्तस्य मदः वित्तमदः, तेन मत्तं चित्तं येषां ते। निश्चेतनतया = चेतना खो देने के कारण, अज्ञान से ग्रस्त होकर, विवेकरहित होकर। निर्गता चेतना येभ्यः निश्चेतनाः, तेषां भावः। तथा एव इति = ऐसा ही है, धूर्तों के वचन को सत्य मानते हुए। आत्मनि आरोपितालीकभिमाना = अपने भीतर अभिमान का आरोप किये हुए। अलीकः अभिमानः अलीकाभिमानं, आरोपितः अलीकाभिमानः यैः तथाभूताः। मर्त्यधर्माणः अपि = मरणशील मनुष्यों के धर्म वाले होने पर भी, जन्म-मृत्यु वाले मनुष्य होने पर भी। मर्त्यानां धर्मः मर्त्यधर्मः, मर्त्यधर्मः येषां तथाभूताः। दिव्यांशावतीर्णम् इव = स्वर्गीय अंशों के साथ अवतार लिये हुए के समान, मानो उन्होंने देवता के अंशों के साथ जन्म लिया हो। दिवि भवाः दिव्याः। दिव्याः ये अंशाः दिव्यांशाः, तैः अवतीर्णः, तम्। अव+तृ+क्त। उत्प्रेक्षालंकार। सदैवतम् इव = दैवी भाव से युक्त सा। यहॉ पर उत्प्रेक्षालंकार है। देवता एव दैवतानि, तैः सह वर्तमानम् सदैवतम्। आत्मानम् अतिमानषम् उत्प्रेक्षमाणाः = अपने को मनुष्य से ऊपर समझते हुए। अतिक्रान्तः मानुषान् अति अमानुषम्। उत्प्रेक्षमाणः = उत्,प्र+ईक्ष्+शानच्। प्रारब्ध-दिव्योचित-चेष्टानुभावाः = देवों के समान चेष्टायें और महात्म्य प्रदर्शित करते हुए। दिव्यानाम् उचिताः चेष्टाः अनुभावाश्च दिव्योचितचेष्टानुभावाः प्रारब्धाः दिव्योचितचेष्टानुभावाः यैः ते। सर्वजनस्य उपहास्यताम् उपयान्ति = सभी लोगों के लिए उपहास के पात्र बन जाते हैं। उपहसितुं योग्यः उपहास्यः, तस्य भावः, उपहास्यता, ताम्। जनस्य

एकवचन है किन्तु उसका अर्थ बहुवचन का लिया जायेगा।

हिन्दी भावार्थ- गुणों के बीच आरोपित करने वाले और मन ही मन स्वयं उनके ऊपर हँसने वाले, ठगने में कुशल धूर्तों द्वारा मनुष्य लोक में घटित न होने योग्य स्तुतियों से वे ठगे जाते हैं और धन के मद से बौराये मन वाले वे राजा अविवेकहीन होने के कारण उन धूर्तों के कथनों को वैसा ही मानते हुए अपने में मिथ्या अभिमान भर लेते हैं, मरणशील मनुष्यों के धर्म से युक्त होने पर भी अपने को दिव्य अंश के साथ अवतार लिया हुआ सा और दैवी स्वरूप से सम्पन्न सा समझकर वे देवों के समान चेष्टाएँ और महत्त्व प्रदर्शित करने लगते हैं, जिससे वे सभी लोगों के उपहास के पात्र बन जाते हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. इषव: का क्या अर्थ है -

क. शत्रु ख. धनुष ग. बाध घ. तलवार

2. असमय में खिला हुआ पुष्प किसका सूचक है -

क. विनाश ख. उत्साह ग. कृपणता घ. वीरता

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें -

3. बन्दीजन ख्यातिं .... इति।

4. तरलताम् .... इत।

अति लघु-उत्तरीय प्रश्न

1- किसके द्वारा उपहासास्पद बना दिये जाते है ?

2- किसके समान वे अपने बन्धु-बान्धवों को नहीं पहचानते है ?

3- असमय में उत्पन्न पुष्प मनोहर आकृति के होने पर किसके विनाश के हेतु होते है ?

4- किस कुलों को दण्ड लगाकर या सेना भेजकर नष्ट कर देते हैं ?

5- किस रोगी के समान अदूरदर्शी होते हैं ?

4.4 सारांश

इस इकाई के अध्ययन से आपने जाना कि दुराचारिणी द्वारा जिस किसी प्रकार भाग्यवश अपनाये गये राजा व्याकुल हो जाते हैं और सभी प्रकार की उच्छृंखलताओं के घर बना जाते हैं। और भी। अभिषेक के समय ही मानो मंगलकलशों के जल से उनकी उदारता धो दी जाती है, होमादि अग्निकार्य से हृदय मलिन बना दिये जाते हैं, पुरोहित के कुश के अग्रभाग रूपी सम्मार्जनी से क्षमाशीलता झाड़कर दूर फेंक दी जाती है, रेशमी पगड़ी के बाँधने से वृद्धावस्था आने की स्मृति ढँक दी जाती है, छत्र के मण्डल से परलोक की दृष्टि दूर कर दी जाती है। चँवरों की वायु से मानो सत्यवादिता उड़ा दी जाती है। मानो बेंत के डण्डों से गुणों को भगा दिया जाता है, मानो जय-जयकार के शब्दों के कोलाहल से हितकारी वचनों को तिरस्कृत कर दिया जाता है, ध्वज के

वस्त्र की छोरों से यश को मानो पोंछ दिया जाता है। और भी। कुछ राजापरिश्रम से थके पक्षी की ग्रीवाविवर के समान चंचल, जुगनू की चमक के समान क्षण भर को मनोहर लगने वाली और मनस्वियों द्वारा निन्दित सम्पत्तियों से प्रलोभित होते हैं, धन के अल्प अंश को पाने से उत्पन्न अहंकार के कारण जन्म को भूल जाते हैं, अनेक दोषों के बढ़ जाने से दूषित रक्त के समान, काम आदि अनेक दोषों की वृद्धि के कारण भोगेच्छा की अभिलाषा के आवेश से पीडित रहते हैं। अत: इस इकाई के अध्ययन कर लेने के बाद आप प्रस्तु त इकाई के वर्ण्य विषयों के माध्यम से इस इकाई में प्राप्त शिक्षाओं को बताते हुये सारांश भी अपने शब्दों में लिख सकते है।

4.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
लब्धप्रसरेण	अवसर पाकर।
एकेन अपि	एक होकर भी।
शतसहस्रताम् उपगतेन इव	मानो सौ हजार बने हुए।
मनसा	मन से।
आकुलीक्रियमाणा	आकुल बनाये जाते हुए।
विह्वलताम् उपयान्ति	छटपटाने लगते हैं।
ग्रहैः इव गृह्न्ते	मानो ग्रहों द्वारा पकड़ लिये जाते
भूतैः इव अभिभूयन्ते	मानो भूतों द्वारा अभिभूत कर लिये जाते हैं।
मन्त्रैः इव आवेश्यन्ते	मानो मन्त्रों द्वारा आवेश में पहुँचा दिये जाते हैं।
सत्त्वैः इव	दुष्टात्माओं
अवष्टभ्यन्ते	निश्चेष्ट कर दिये जाते हैं।

4.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1-

1. ख 2. क 3. अभिभूयन्ते 4. हास्यास्पद

अभ्यास प्रश्न 2

1. ग 2. क 3. यश: 4. उत्साह

अति लघु-उत्तरीय प्रश्न –

(1) वायु के द्वारा (2) मरणासन्न व्यक्तियों के समान (3) संसार के विनाश के हेतु (4) सम्भ्रान्त कुलों को (5) तिमिर नेत्ररोग के रोगी के समान

4. 7 सदर्भ ग्रन्थ सूची

1-ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
कादम्बरी	बाणभट्ट	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

4. 8 उपयोगी पुस्तकें

1-ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
कादम्बरी	बाणभट्ट	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

4. 9 निबन्धात्मक प्रश्न

1. निम्नलिखित की सन्दर्भ सहित व्याख्या कीजिये -
इषव इव पानवर्धिततैक्ष्ण्याः परप्रेरिता विनाशयन्ति, दूरस्थितान्यपि फलानि दण्डविक्षेपैः महत्कुलानि शातयन्ति, अकालकुसुमप्रसवा इव मनोहराकृतयोऽपि लोकविनाशहेतवः श्मशानाग्नय इवातिरौद्रभूतयः तैमिरिका इवादूरदर्शिनः।

2. प्रस्तुत इकाई का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

इकाई : 5 आत्मविडम्बनाम् ..... स्वभवनम् आजगाम तक व्याख्या

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

संस्कृत गद्य साहित्य से सम्बन्धित खण्ड तीन की पाचवीं इकाई है। इसके पूर्व की इकाई में आपने लक्ष्मी के विभिन्न प्रभावों व स्वरूपों का अध्ययन किया है। इस इकाई में आप शुकनास द्वारा चन्द्रापीड को दिये गये उपदेश के अगले भाग के वर्ण्य विषयों का अध्ययन करेंगे।

शुकनास चन्द्रापीड को उपदेश देते हुए कहते है कि युवराज पद पर अभिषेक के मंगल का आनन्द प्राप्त कीजिए। कुल परम्परा से चली आयी हुई और अपने पूर्वजों द्वारा ढोयी गयी (राज्य शासन के भार की) धुर को वहन कीजिए। शत्रुओं के सिरों को झुका दीजिए, अपने बन्धुओं के समूह का उत्थान कीजिए और अभिषेक के बाद दिग्विजय प्रारम्भ कर चारों ओर भ्रमण करते हुए अपने पिता द्वारा जीती गयी भी सात द्वीपों के अलंकार वाली इस धनधान्य सम्पन्ना पृथ्वी को फिर से अपने अधीन कीजिए।

अत: प्रस्तुत इकाई में बताये गये तथ्यों का सम्यक् अध्ययन कर लेने के पश्चात् आप ब्राह्मण, गुरू , राजा, आदि के कर्तव्यों और विभिन्न सम्बन्धों में किये जाने वाले विश्वासों की भली - भॉति व्याख्या कर सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

शुकनास द्वारा चन्द्रापीड को दिए गये उपदेश से सम्बद्ध इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप -

- सेवकों द्वारा अपनी नकल किये जाने पर प्रसन्न होते हैं, इसकी व्याख्या कर सकेंगे।
- अपने ललाट में त्वचा के नीचे तीसरे नेत्र के छिपे होने की आशंका करने लगते हैं। इस तथ्य को समझा सकेंगे।
- वार्तालाप कर देना धन का भाग देने जैसा समझते हैं, इसके बारे में विस्तृत उत्तर दे सकेंगे।
- विषयसुख तुम्हें कुमार्ग में न ले जाये , इस वाक्य की पुष्टि उदाहरणों से कर सकेंगे।
- प्रस्तुत इकाई में प्राप्त शिक्षाओं का उल्लेख कर सकेंगे।
- इस इकाई के विभिन्न गद्यखण्डों को व्याख्यायित करेंगे।

5.3 आत्मविडम्बनाम् ..... स्वभवनम् आजगाम् तक व्याख्या

आत्मविडम्बनां चानुजीविना जनेन क्रियमाणामभिनन्दन्ति। मनसा देवताध्यारोपण-विप्रतारणादसद्भूत- संभावनोप -हताश्चान्तः प्रविष्टापरभुजद्वयमिवात्मबाहुयुगलं संभावयन्ति। त्वगन्तरिततृतीयलोचनं स्वललाटमाशङ्कते। दर्शनप्रदानमप्यनुग्रहं गुणयन्ति। दृष्टिपातमप्युपकारपक्षे स्थापयन्ति। संभाषणमपि संविभागमध्ये कुर्वन्ति।

शब्दार्थ - अनुजीविना जनेन = सेवकों द्वारा, अनुजीवति इति अनुजीवी, तेन। अनु + जीव् + इन्। क्रियमाणाम् = की जाती हुई, कृ+शानच् कर्म अर्थ में। आत्म-विडम्बनाम् = अपनी नकल

को, अभिनन्दन्ति = पसन्द करते हैं, उससे उस सेवक पर प्रसन्न होते हैं। मनसा = मन ही मन। देवताध्यारोपण-विप्रतारणात् = देवता के अध्यारोपण के धोखे में पड़ने के कारण। देवतायाः अध्यारोपणम् देवताध्यारोपणम्, तदेव विप्रतारणम्, देवताध्यारोपणविप्रतारणम्, तस्मात्। असद्भूत-संभावनोपहताः च = अविद्यमान की सम्भावना करने से मूर्खता में पड़े हुए। जो देवत्व उनमें नहीं है उसे अपने में समझ लेने के कारण जिनकी मति मारी गयी है। सती भूता इति सद्भूता, न सद्भूता असद्भूता, असद्भूता च संभावना असद्भूतसंभावना, तया उपहताः। अन्तःप्रविष्टापरभुजद्वयम् इव = मानो उनके भीतर दो दूसरी भुजाएँ प्रविष्ट हों। अपनी बाहुओं के भीतर प्रविष्ट दो और भुजाओं की सम्भावना करते हुए। भुजयोः द्वयम् भजद्वयम्, अन्तःप्रविष्टं अपरं भुजद्वयम् यस्मिन् तथाभूतम्। बाहुयुगलम् का विशेषण है। आत्मबाहुयुगलं संभावयन्ति = अपनी दोनों भुजाओं के विषय में संभावना कर लेते हैं कि उनके भीतर और दो भुजाएँ प्रविष्ट हैं और वे विष्णु के ही रूप हैं। त्वगन्तरित-तृतीयलोचनम् = त्वचा के पीछे तीसरा नेत्र छिपा हुआ है ऐसी आशंका कर लेते हैं। त्वचा अन्तरितम् तृतीयं लोचनम् यस्मिन् तत् (ललाटम् का विशेषण है)। स्वललाटम् = अपने ललाट के विषय में, स्वस्य ललाटम् स्वललाटम्। आशंकते = आशंका कर लेते हैं, समझ लेते हैं, संभावना करते हैं। अपने को शिव का रूप समझने लगते हैं। दर्शनप्रदानम् अपि = दर्शन देना भी दर्शनस्य प्रदानं दर्शनप्रदानम्। अनुग्रहम् गणयन्ति = कृपा करना मानते हैं। दृष्टिपातम् अपि = किसी पर दृष्टि डालना भी। दृष्टेः पातः दृष्टिपातः, तम्। पातः-पत्+घञ्। उपकारपक्षे स्थापयन्ति = उपकार के वर्ग में रखते हैं, किसी पर दृष्टि डालने को ऐसा समझते हैं जैसे उस पर उपकार कर दिये। स्थापयन्ति = स्था+णिच्+लट् लकार प्रथम पु0 बहुवचन उपकारस्य पक्षे उपकारपक्षे। उप + कृ + घञ्। संभाषणाम् अपि = वार्तालाप कर लेना भी। सम् + भाष् + ल्युट्। संविभागमध्ये कुर्वन्ति = धन का भाग देने के कार्य में जोड़ते हैं। ऐसा समझते हैं जैसे धन का हिस्सा ही दे दिया हो, कोई बड़ा पुरस्कार दे दिया हो। सम्, वि+भज्+घञ्। संविभागस्य मध्ये संविभागमध्ये।

हिन्दी भावार्थ:- सेवकों द्वारा अपनी नकल किये जाने पर प्रसन्न होते हैं, मन ही मन देवता का अपने ऊपर आरोप किये जाने के धोखे के कारण अविद्यमान शक्तियों की संभावना करने से उनकी मति मारी जाती है और वे ऐसा समझने लगते हैं कि उनकी दोनों भुजाओं के भीतर दूसरी और दो भुजाएँ प्रविष्ट हैं। वे अपने ललाट में त्वचा के नीचे तीसरे नेत्र के छिपे होने की आशंका करने लगते हैं। किसी को दर्शन देना भी कृपा करना गिनते हैं, दृष्टि डाल देना भी उपकार करने में जोड़ते हैं। वार्तालाप कर देना धन का भाग देने जैसा समझते हैं।

आज्ञामपि वरप्रदानं मन्यन्ते। स्पर्शमपि पावनमाकलयन्ति। मिथ्यामाहात्म्यगर्वनिर्भराश्च न प्रणमन्ति देवताभ्यः, न पूजयन्ति द्विजातीन्, न मानयन्ति मान्यान् नार्चयन्त्यर्चनीयान् नाभिवादयन्त्यभिवादनार्हान्, नाभ्युत्तिष्ठन्ति गुरुन् अनर्थकायासान्तरितोपभोग सुखमित्युपहसन्ति विद्वज्जनम् जरावैक्लव्यप्रलपितमिति पश्यन्ति वृद्धोपदेशम्,

शब्दार्थ - आज्ञाम् अपि = किसी को आज्ञा देना भी। वरप्रदानं मन्यन्ते = ऐसा मानते हैं जैसे उसे वरदान दे दिया। वरस्य प्रदानं वरप्रदानम्। स्पर्शम् अपि = किसी को छू लेना भी, पावनम् आकलयन्ति = पवित्र कर देना मानते हैं। ऐसा समझते हैं जैसे उसे पवित्र कर दिया। स्पृश्+घञ्-स्पर्शः। मिथ्या-माहात्म्य-गर्व-निर्भराश्च = अपनी मिथ्या महत्ता के अहंकार में चूर होकर। महान् आत्मा यस्य सः महात्मा। तस्य भावः माहात्म्यम्। महात्मन्+ष्यञ्´ प्रत्यय। मिथ्या माहात्म्यं मिथ्यामाहात्म्यम्, तस्य गर्वः मिथ्यामाहात्म्यगर्वः, तेन निर्भराः। न प्रणमन्ति देवताभ्यः = देवों को प्रणाम नहीं करते हैं। न पूजयन्ति द्विजातीन् = ब्राह्मणों की पूजा नहीं करते। द्वे जाती येषां ते द्विजातयः, तान्। यहाँ ब्राह्मण से ही तात्पर्य है, यद्यपि द्विजाति में तीन उच्च वर्ण माने जाते हैं। न मानयन्ति मान्यान् = आदरणीय श्रेष्ठ जनों का आदर नहीं करते। मानयितुं योग्याः मान्याः। मान्+ण्यत् प्रत्यय। न अर्चयन्ति अर्चनीयान् = पूजा-सत्कार करने योग्य लोगों का सत्कार नहीं करते। अर्चयितुं योग्याः अर्चनीयाः, तान्। अर्च्+अनीयर्। न अभिवादयन्ति अभिवादनार्हान् = अभिवादन के योग्य लोगों का अभिवादन नहीं करते। अभिवादनस्य अर्हान् अभिवादनार्हान्। न अभ्युत्तिष्ठन्ति गुरून् = गुरुजनों के आगमन पर उनके स्वागत-सम्मान में उठते नहीं हैं। अनर्थक-आयास-अन्तरित-उपभोग-सुखम् इति = निष्प्रयोजन कार्यों पर परिश्रम में उपभोगसुख को गँवा दिया ऐसा कहकर। न अर्थः यस्य तथाभूतः आयासः अनर्थकायासः, तेन अन्तरितम् उपभोगस्य सुखम् यस्य तथाभूतम्। तात्पर्य यह कि ये भोगपरायण राजा धर्माचरण, यज्ञ, अध्ययन, अध्यापन आदि करने वाले विद्वानों की यह कहकर हँसी उड़ाते हैं कि व्यर्थ के कार्यों में इन्होंने भोग के अवसर खो दिये। उपहसन्ति = उपहास करते हैं, हँसी उड़ाते हैं। जरा-वैक्लव्यप्रलपितम् इति पश्यन्ति वृद्धोपदेशम् = वृद्ध जनों के हितकारी उपदेश को वृद्धावस्था के वैक्लव्य या दुर्बलता के कारण प्रलाप के रूप में देखते हैं। विकलस्य भावः वैक्लव्यम्। जरया वैक्लव्यम् जरावैक्लव्यम् प्रलपितम् इति। वैक्लव्य-विकल+ष्यञ्´।

हिन्दी भावार्थः- आज्ञा देने को वर दे देने जैसा मानते हैं, स्पर्श कर लेने को पवित्र कर देने वाला समझते हैं, अपनी झूठी महत्ता के गर्व से भरे हुए वे देवों को प्रणाम नहीं करते, ब्राह्मणों की पूजा नहीं करते, सम्माननीय जनों का सम्मान नहीं करते, सत्कार करने योग्य लोगों का सत्कार नहीं करते, प्रणाम करने योग्य जनों को प्रणाम नहीं करते, गुरुओं के आने पर उनके आदर में उठते नहीं हैं। विद्वानों पर यह कहकर हँसते हैं कि व्यर्थ के (यजन, अध्ययन, अध्यापन) कार्यों में इन्होंने उपभोग के सुख को गँवा दिया और वृद्ध जनों के उपदेश को बुढ़ापे की दुर्बलता के प्रभाव से किये जाने वाले प्रलाप के रूप में देखते हैं।

आत्मप्रज्ञापरिभव इत्यसूयन्ति सचिवोपदेशाय, कुप्यन्ति हितवादिने। सर्वथा तमभिनन्दन्ति, तमालपन्ति, तं पार्श्वे कुर्वन्ति, तं संवर्धयन्ति, तेन सह सुखमवतिष्ठन्ते, तस्मै ददति, तं मित्रतामुपजनयन्ति, तस्य वचनं शृण्वन्ति, तत्र वर्षन्ति, तं बहु मन्यन्ते, तमाप्ततामापादयन्ति, योऽहर्निशमनवरतमुपरचिताञ्जलिरधिदैवतमिव विगतान्यकर्त्तव्यः स्तौति, यो वा माहात्म्यमुद्भावयति।

शब्दार्थ - आत्मप्रज्ञा-परिभवः इति = अपनी बुद्धि का तिरस्कार है ऐसा मानकर, आत्मनः प्रज्ञा

आत्मप्रज्ञा, तस्याः परिभवः। परि+भू+अप् । सचिवोपदेशाय असूयन्ति = सचिवों के समझाने पर उनसे चिढ़ते हैं, जलते हैं । सचिवानाम् उपदेशः सचिवोपदेशः तस्मै। असूया से नाम धातु लट् लकार। हितवादिने कुप्यन्ति = हित वचन बोलने वाले पर कुपित होते हैं। हितं वदति इति हितवादी, तस्मै । हित+वद्+इन् प्रत्यय। सर्वथा = सभी प्रकार से। सर्व+थाल् प्रत्यय। तम् अभिनन्दन्ति = उसी का अभिवादन करते हैं या आने पर प्रसन्न होते हैं। तम् आलपन्ति = उसी से बातें करते हैं, तं पार्श्वे कुर्वन्ति = उसे ही अपने पास रखते हैं । तं संवर्धयन्ति = उसी को प्रोत्साहन देते हैं, आगे बढ़ाते हैं । तेन सह सुखम् अवतिष्ठन्ते = उसी के साथ सुखपूर्वक रहते हैं, उसी के साथ रहने में सुख का अनुभव करते हैं। तस्मै ददति = उसे ही देते हैं । तं मित्रताम् उपजनयन्ति = उसी से मित्रता बनाये रखते हैं । तस्य वचनं शृण्वन्ति = उसी की बातें सुनते हैं। तत्र वर्षन्ति = उसी पर धन की वर्षा करते हैं । तं बहु मन्यन्ते = उसी को महत्व देते हैं।तम् आप्तताम् आपादयन्ति = उसे ही विश्वासपात्र बना लेते हैं। आप्तस्य भावः आप्तता, ताम्। आपादयन्ति-आःपद + णिच् + लट्लकार । विश्वसनीयता पर पहुँचाते हैं। यः = जो। अहर्निशम् = दिनरात, अहश्च निशा च अहर्निशे, तयोः समाहारः अहर्निशम्। द्वन्द्व समास। अनवरतम् = निरन्तर। न अवरतं यथा स्यात् तथा । उपरचितांजलि = अंजलि बाँधे हुए, हाथ जोड़े हुए। उपरचितःअंजलि येन सः। अधिदैवतम् इव = देवता के समान । विगतान्यकर्त्तव्यः = अन्य कार्यों को छोड़े हुए, विगतानि अन्यानि कर्त्तव्यानि यस्य सः। स्तौति = स्तुति करता रहता है, यो वा माहात्म्यम् उद्भावयति = या जो उनकी महत्ता को बताता रहता है,अनेक प्रकार के शब्दजाल बनाकर उनकी महत्ता का बखान करता रहता है । महात्मनः भावः माहात्म्यम् । महात्मन्+ष्यञ् प्रत्यय । उद्भावयति = उद् + भू + णिच् से लट् लकार ।

हिन्दी भावार्थः- अपनी बुद्धि का निरादर समझकर सचिवों के उपदेश पर कुढ़ते हैं, हितकारी वचन बोलने वाले पर कोप करते हैं, सभी प्रकार से उसी का अभिनन्दन करते हैं, उसी से बातें करते हैं, उसे ही अपने पास रखते हैं, उसी को आगे बढ़ाते हैं, उसी के साथ सुखपूर्वक रहते हैं, उसे ही देते हैं, उसी से मित्रता रखते हैं, उसी की बातें सुनते हैं, उस पर धन की वर्षा करते हैं, उसे महत्त्व देते हैं और उसे ही अपना विश्वासपात्र बना लेते हैं, जो दिन-रात निरन्तर हाथ जोड़े हुए उन्हें देवता के समान प्रदर्शित करते हुए अन्य कार्यों को छोड़कर उन्हीं की स्तुति करता है या उनकी महत्ता का बखान करता रहता है ।

किं वा तेषां साम्प्रतं येषामतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घणं कौटिल्यशास्त्रं प्रमाणम्, अभिचारक्रियाः क्रूरैकप्रकृतयः पुरोधसो गुरवः, पराभिसन्धानपरा मन्त्रिण उपदेष्टारः, नरपतिसहस्रभुक्तोज्झितायां लक्ष्म्यामासक्तिः, मारणात्मकेषु शास्त्रेष्वभियोगः, सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरक्ता भ्रातर उच्छेद्याः। तदेवंप्रायातिकुटिल-कष्टचेष्टासहस्रदारुणे राज्यतन्त्रेऽस्मिन्।

शब्दार्थ - किं वा तेषां साम्प्रतम् = उनके लिए भला क्या उचित है। येषाम् = जिनके लिए। अतिनृशंसप्रायोपदेशनिर्घणम् = अधिकांश अतिशय क्रूर कर्मों के उपदेश से भरे हुए। अतिशयेन नृशंसः अतिनृशंसः, अतिनृशंसः प्रायः भागः यस्य तथाभूतः उपदेशः, तेन निर्घृणम्। निर्गता घृणा

यस्मात् तथाभूता। यहाँ घृणा का अर्थ दया है। कौटिल्य अर्थात् चाण्क्य के अर्थशास्त्र से तात्पर्य है जिसमें राजा के लिए प्रायः क्रूरतापूर्ण उपायों का उपदेश किया गया है। अभिचारक्रियाक्रूरैकप्रकृतयः = जिनका स्वभाव एकमात्र अभिचार क्रिया में लगे रहने के कारण क्रूर है। अभिचारस्य क्रियाः अभिचारक्रियाः, तया क्रूरा एका प्रकृतिः येषां ते तथाभूताः (पुरोधसः का विशेषण) उनका स्वभाव क्रूर ही होता है, क्योंकि वे दूसरों को नष्ट करने, मारने के लिए हिंसा भावना से प्रेरित मारण, मोहन, उच्चाटन आदि क्रियाएँ करते रहते हैं। पुरोधसः = पुरोहित। गुरवः = गुरु होते हैं, उनके शिक्षक होते हैं। पराभिसन्धानपरा मन्त्रिणः = दूसरों को धोखा देने में ही लगे रहने वाले मन्त्री। परेषाम् अभिसन्धानम् पराभिसन्धानम् तदेव परं येषां ते। अभिसन्धान =वंचना, धोखा, उपदेष्टारः = उपदेश देने वाले होते हैं। नरपतिसहस्रभुक्तोज्झितायां = सहस्रों राजाओं द्वारा भोग करने के बाद छोड़ी गयी (लक्ष्मी के लिए)। नरपतीनां सहस्राणि नरपतिसहस्राणि, तैः भुक्ता अनन्तरम् उज्झिता इति नरपतिसहस्रभुक्तोज्झिता, तस्याम्। लक्ष्म्याम् आसक्तिः = लक्ष्मी में आसक्ति होती है। मारणात्मकेषु शास्त्रेषु अभियोगः = दूसरों को मारने का ज्ञान देने वाले तन्त्र आदि शास्त्रों में ही लगाव होता है। 'मारणात्मकेषु शस्त्रेषु' पाठ भी है तब अर्थ होगा दूसरों का विनाश करने वाले शस्त्रों में। सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरक्तः = जन्मजात प्रेम के कारण जिनके हृदय आर्द्र और अनुरक्त होते हैं (भ्रातरः का विशेषण)। सह जातं यत् प्रेम सहजप्रेम, तेन आर्द्रम् हृदयं येषां तथाभूताः, सहजप्रेमार्द्रहृदयाः। सहजप्रेमार्द्रहृदयाश्च अनुरक्ताश्च सहजप्रेमार्द्रहृदयानुरक्ताः। भ्रातरः = भाई, अपने भ्राता। उच्छेद्याः = नष्ट किये जाने योग्य होते हैं, उन्मूलन या मार डालने योग्य होते हैं, उच्छेतुं योग्याः उच्छेद्याः। उत्+छिद्+ण्यत्। तदेवंप्रायातिकुटिल-कष्टचेष्टासहस्रदारुणे = तो इस प्रकार की अतिशय कुटिल और कष्ट देने वाले सहस्रों कार्यों के कारण क्रूर या भीषण। राजतन्त्रे = राजतन्त्र में, राज्य के शासन में। एवं प्रायेण यत्र एवंप्रायः। अतिशयेन कुटिलाः अतिकुटिलाः। एवंप्रायातिकुटिलाः कष्टाश्च चेष्टाः एवंप्रायातिकुटिलकष्टचेष्टाः, तासां सहस्राणि, तैः दारुणम् तस्मिन्।

हिन्दी भावार्थः- उन राजाओं की कौन-सी बात उचित है जिनके लिए प्रायः अतिशय कर्मों के उपदेश से ही भरे हुए कौटिल्य का अर्थशास्त्र प्रमाण है, हिंसक अभिचार क्रियाओं के कारण जिनका स्वभाव एकमात्र क्रूरता का है, ऐसे पुरोहित जिनके गुरु होते हैं, जिनको उपदेश देने वाले दूसरों को धोखा देने में ही लगे रहने वाले मन्त्री होते हैं, सहस्रों राजाओं द्वारा भोग करने के बाद छोड़ी गयी लक्ष्मी में जिनकी आसक्ति होती है, जिनका लगाव दूसरों का विनाश करने वाले शास्त्रों (या शस्त्रों) में होता है और सहज प्रेम से आर्द्र हृदय वाले अनुरक्त भाई जिनके लिए उन्मूलित किये जाने योग्य होते हैं, तो इस प्रकार की अतिशय कुटिल और कष्टकारी है।

अभ्यास प्रश्न 1 -

बहुविकल्पीय

1. अनुजीविना जनेन इस पद का क्या अर्थ है -

   क. मित्र ख. राजा ग. सेवक घ. सैनिक

2. ललाट के उपर किसकी सम्भावना की जाती है -

क. चन्दन की ख . गेरू की ग. धन की घ. तृतीय नेत्र की

रिक्त स्थान की पूर्ति करें -

3. ब्राह्मणों की .... नहीं करते।

4. हितकारी वचन बोलने वाले पर .... करते हैं।

राज्यतन्त्रेऽस्मिन् महामोहकारिणी च यौवने कुमार! तथा प्रयतेथाः यथा नोपहस्यसे जनैः, न निन्द्यसे साधुभिः, न धिक्क्रियसे गुरुभिः, नोपालम्यसे सुहृद्भिः, न शोच्यसे विद्वद्भिः । यथा च न प्रकाश्यसे विटैः, न प्रतार्यसे कुशलैः, नास्वाद्यसे भुजङ्गैः, नावलुप्यसे सेवकवृकैः, न वञ्चयसे धूर्तैः, न प्रलोभ्यसे वनिताभिः, न विडम्ब्यसे लक्ष्म्या, न नर्त्यसे मदेन, नोन्मत्तीक्रियसे मदनेन,

शब्दार्थ - अस्मिन् महामोहान्धकारिणि च यौवने = और इस घोर मोह अर्थात् अविवेक रूपी अन्धकार को उत्पन्न करने वाले यौवन में। महान् चासौ मोहः महामोहः, महामोहेन अन्धं कर्तुं शीलं यस्य तत् महामोहान्धकारि, तस्मिन् । कारी = कृ + णिन् प्रत्यय । कुमार = कुमार चन्द्रापीड! तथा प्रयतेथाः = ऐसा प्रयत्न करो कि। अब यहाँ सत्रह वाक्य कर्मवाच्य में दिये गये हैं। इनका अर्थ की स्पष्टता के लिए कर्तृवाच्य में अनुवाद किया जा सकता है । यथा जनैः नोपहस्यसे = लोगों द्वारा तुम्हारी हँसी न उड़ायी जाय, तुम लोगों के उपहास के पात्र न बनो। साधुभिः न निन्द्यसे = सज्जनों द्वारा तुम्हारी निन्दा न की जाय, सज्जन तुम्हारी निन्दा न करें। गुरुभिः न धिक्क्रियसे = गुरुजन तुम्हें धिक्कारे नहीं । सुहृद्भिः न उपालभ्यसे = मित्रों के लिए उपालम्भ के पात्र न बनो, मित्र तुम्हें कोसें नहीं । विद्वद्भिः न शोच्यसे = द्विानों के लिए तुम शोचनीय न बनो। यथा च = और जिस प्रकार के आचरण से। विटैः न प्रकाश्यसे = विटों या कामुक पुरुषों द्वारा तुम्हारे दोषों का प्रचान न किया जाय। कुशलैः न प्रहस्यसे = अपनी कार्यसिद्धि में चतुर व्यक्ति तुम्हारी हँसी न उड़ायें। भुजङ्गैः न आस्वाद्यसे = लम्पटों द्वारा तुम्हारे धन का भोग न किया जाय। सेवकवृन्दैः न अवलुप्यसे = सेवकगण तुम्हारे धन की लूट-खसोट न करें । वनिताभिः न प्रलोभ्यसे = स्त्रियों द्वारा तुम्हें लुभाया या फाँसा न जाय । लक्ष्म्या न विडम्ब्यसे = राजलक्ष्मी तुम्हारी मति को बौरा न दे। मदेन न नर्त्यसे = मद अर्थात् अहंकार से तुम नाचने न लगो। न उन्मत्तीक्रियसे मदनेन = मदन अर्थात् कामवासना तुम्हें पागल न बना दे। अनुत्मत्तः उन्मत्तः सम्पद्यमानः क्रियते इति। उन्मत्त+कृ+च्वि+लट् लकार।

हिन्दी भावार्थः-सहस्रों चेष्टाओं के कारण भीषण इस राज्यतन्त्र में और घोर अविवेक रूपी अन्धकार उत्पन्न करने वाले यौवन में, कुमार! इस प्रकार प्रयत्न करना कि लोगों की हँसी के पात्र न बनो, सज्जनों द्वारा तुम्हारी निन्दा न की जाय, गुरुजन तुम्हें धिक्कारे नहीं, मित्र तुम्हें उपालम्भ न दें, विद्वानों के लिए तुम शोचनीय न बनो, और (ऐसी चेष्टा करो) जिससे विट या कामुक पुरुष तुम्हारे दोषों का प्रचार न करें, अपनी कार्यसिद्धि में कुशल पुरुष तुम्हें ठगने न पावें, लम्पट लोग तुम्हारे धन का उपभोग न करें, सेवकगण तुम्हारे धन को लूटें नहीं, धूर्त तुम्हें धोखा न दें, स्त्रियाँ तुम्हें फँसा न सकें, राजलक्ष्मी तुम्हारी मति को बौरा न दे, तुम मद अर्थात् अहंकार से

नाचने न लगो, कामवासना तुम्हें पागल न बना दे,।

नाक्षिप्यसे विषयैः, नावकृष्यसे रागेण, नापह्रियसे सुखेन। कामं भवान् प्रकृत्यैव धीरः, पित्रा च महता यत्नेन समारोपित-संस्कारः। तरलहृदयमप्रतिबुद्धं च मदयन्ति धनानि, तथापि भवद्गुणसन्तोषो मामेवं मुखरीकृतवान्। इदमेव च पुनः पुनरभिधीयसे। विद्वांसमपि सचेतनमपि महासत्त्वमप्यभिजातमपि धीरमपि प्रयत्नवन्तमपि पुरुषमियं दुर्विनीता खलीकरोति लक्ष्मीरिति। सर्वथा कल्याणैः पित्रा क्रियमाणम् ।

शब्दार्थ - नाक्षिप्यसे विषयैः = विषयसुख तुम्हें कुमार्ग में न ले जाय । न अवकृष्यसे रागेण = विषयभोग का आकर्षण तुम्हें पतन की ओर न ले जाय। नापह्रियसे सुखेन = सुख तुम्हें कर्त्तव्य से दूर न कर दे । कामम् = निश्चय ही । भवान् प्रकृत्या एव धीरः = आप स्वभाव से ही धैर्यशाली हैं । पित्रा च = और पिता द्वारा भी । महता यत्नेन = बड़े यत्न के साथ। समारोपितसंस्कारः = आप में संस्कार डाले गये हैं । समारोपिताः संस्काराः यस्मिन् सः । तरलहृदयम् = चंचल मन वाले को, तरलं हृदयं यस्य सः तरलहृदयः तम् । अप्रतिबुद्धं च = बोधरहित व्यक्ति को ही, न प्रतिबुद्धः तम्। मदयन्ति धनानि = धन पागल बना देते हैं, उन्मत्त कर देते हैं । तथापि = फिर भी। यद्यपि आप वैसे नहीं हैं, फिर भी । भवद्गुणसन्तोषः = आपके गुणों से उपजे हुए सन्तोष ने, आपके गुणों को देखकर मुझे जो सन्तोष हुआ है, उस सन्तोष ने । भवतः गुणाः भवद्गुणाः, तैः सन्तोषः । माम् एवं मुखरीकृतवान् = मुझे इस प्रकार कहने के लिए प्रेरित किया है, मुझसे यह सब कहलवाया है । अमुखरं मुखरं सम्पद्यमानं कृतवान् । इतमेव च = और यही बात। पुनः पुनः = बार-बार। अभिधीयसे = आप से कही जा रही है । मैं आपसे यही बात बार-बार कह रहा हूँ । विद्वांसम् अपि = विद्वान् को । सचेतनम् अपि = चेतना से युक्त प्रबुद्ध व्यक्ति को भी । चेतनया सह विद्यमानः सचेतनः, तम् । महासत्त्वम् अपि = महान शक्तिशाली या मनस्वी को भी । महान् सत्त्वः यस्य सः महासत्त्वः, तम् । अभिजातम् अपि = उच्च कुल में उत्पन्न को भी। धीरम् अपि = धैर्यवान् पुरुष को भी । प्रयत्नवन्तम् अपि पुरुषम् = प्रयत्न करने वाले को भी, अपनी उन्नति हेतु उद्योगशील पुरुष को भी । इयं दुर्विनीता लक्ष्मीः इति = यह दुर्विनीता अर्थात् वश में न रहने वाली लक्ष्मी । दुर्विनीता = दुर्,वि + नी + क्त + आप् । खलीकरोति = दुष्ट बना देती हैं अखलं खलं सम्पद्यमानं करोति इति । सर्वथा = सभी प्रकार से अनुभव करें । कल्याणैः = मंगलाचारों के साथ । पित्रा क्रियमाणम् = पिता द्वारा किये जाने वाले कर्म ।

हिन्दी भावार्थः- विषयसुख तुम्हें कुमार्ग में न ले जाये, आसक्ति तुम्हें पतन में न डाले, सुख तुम्हें कर्त्तव्य से दूर न कर दे। निश्चय ही, आप स्वभाव से ही धैर्यवान् हैं और पिता ने भी बड़े यत्न से आपमें संस्कार डाले हैं। चंचल हृदय वाले और बोधरहित को ही धन अहंकार से पागल बना देते हैं, फिर भी आपके गुणों को देखकर उपजे सन्तोष ने मुझे यह सब कहने के लिए प्रेरित किया है। यही मैं आपसे बार-बार कह रहा हूँ । विद्वान् को भी, प्रबुद्ध को भी, महान् शक्तिशाली या मनस्वी को भी, उच्च कुल में उत्पन्न व्यक्ति को भी, धैर्यवान् को भी और (अपनी समुन्नति के) प्रयत्न में लगे रहने वाले पुरुष को भी यह दुष्टा लक्ष्मी दुष्ट बना देती है। सभी प्रकार से पिता द्वारा

मंगलाचारों के साथ किये जाने वाले।

अनुभवतु भवान् नवयौवराज्याभिषेकमङ्गलम्। कुलक्रमागतामुद्वह पूर्वपुरुषैरूढ़ां धुरम्। अवनमय द्विषतां शिरांसि। उन्नमय स्वबन्धुवर्गम्। अभिषेकानन्तरम् च प्रारब्धदिग्विजयः परिभ्रमन् विजितामपि तव पित्रा सप्तद्वीपभूषणां पुनर्विजयस्व वसुन्धराम्। अयं च ते कालः प्रतापमारोपयितुम्।

शब्दार्थ - अनुभवतु भवान् = आप अनुभव करें। सभी प्रकार से राज्याभिषेक के सुखों को भोगिए नवयौवराज्याभिषेकमङ्गलम् = नये युवराज पद पर अभिषेक के मंगल को। युवा राजा इति युवराजः, युवराजस्य भावः यौवराज्यम्, नवं च तत् यौवराज्यम् नवयौवराज्यम्, तस्मै अभिषेकः नवयौवराज्याभिषेकः, सः एव मंगलम् नवयौवराज्याभिषेकमंगलम्। कुलक्रमागताम् = कुलपरम्परा से चली आने वाली, कुलस्य क्रमः कुलक्रम: तस्मात् आगताम् कुलक्रमागताम्। उद्वह = वहन कीजिये। पूर्वपुरुषैः ऊढां धुरम् = पूर्वजों द्वारा ढोयी गयी धुरा को, राज्य के भार को, गाड़ी के अग्रभाग को धुर् कहते हैं, जहाँ बैल जोते जाते हैं। राज्य का भार वहन करना भी एक प्रकार से मानो गाड़ी को खींचना ही है। पूर्वे च ते पुरुषाः पूर्वपुरुषाः तैः। अवनमय = झुका दो, नीचे कर दो। अव + नी + णिच् + लोट् लकार। द्विषतां शिरांसि = शत्रुओं के सिरों को। द्विषन्ति इति द्विषन्तः तेषाम्। उन्नमय = ऊँचा करो। उत् + नी + णिच् + लोट् लकार। स्वबन्धुवर्गम् = अपने बन्धुओं के समूह को। बन्धूनां वर्गः बन्धुवर्गः, स्व चासौ बन्धुवर्गश्च स्वबन्धुवर्गः तम्। अभिषेकानन्तरम् च = और अभिषेक के बाद। अभिषेकात् अनन्तरम् अभिषेकानन्तरम्। प्रारब्धदिग्विजयः = दिग्विजय प्रारम्भ कर, दिशां विजयः दिग्विजयः, प्रारब्धः दिग्विजयः येन सः। परिभ्रमन् = पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए, पर् , भ्रम्+शतृ। विजिताम् अपि तव पित्रा = आपके पिता द्वारा जीती गयी भी (वसुन्धराम् का विशेषण है)। विजिताम् = वि + जि + क्त + टाप्-विजिता, ताम्। सप्तद्वीपभूषणाम् = सात द्वीपों के अलंकार वाली, सप्त च ते द्वीपाः सप्तद्वीपाः, ते एव भूषणं यस्याः तथाभूता सप्तद्वीपभूषणा, ताम्। पृथ्वी को सप्तद्वीपा कहा गया है। पुराणों के अनुसार सम्पूर्ण पृथ्वी सात द्वीपों में है, जिनके नाम हैं- जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रोंच, शाक और पुष्कर। पुनः विजयस्व = फिर से जीतिए, दुबारा अपने अधीन कीजिए। वसुन्धराम् = पृथ्वी को। वसु का अर्थ धन है, पृथ्वी अपने भीतर अनेक प्रकार के धनों को धारण करती है, इस कारण इसे वसुन्धरा कहते हैं। वसूनि धारयति इति वसुन्धरा। अयं च ते कालः = यही आपके लिए समय है। युवराज पद पर अभिषेक होते ही अपने प्रताप को स्थापित करने के लिए यही सर्वोत्तम समय है। प्रतापम् आरोपयितुम् = अपने प्रताप को प्रतिष्ठित करने का, जमाने का। प्रताप राजा का अपनी प्रजा पर और दूसरे राजाओं पर प्रभाव है, जो सेना की शक्ति और राज्य की आर्थिक समृद्धि से स्थापित होता है। पूर्व में अपने पिता द्वारा जीते गये राजाओं को पुनः स्वयं जीतने के लिए शुकनास का उपदेश इस प्रताप को स्थापित करने के उद्देश्य से ही प्रेरित है।

हिन्दी भावार्थः- नये युवराज पद पर अभिषेक के मंगल का आनन्द प्राप्त कीजिए। कुल परम्परा से चली आयी हुई और अपने पूर्वजों द्वारा ढोयी गयी (राज्य शासन के भार की) धुर को वहन

कीजिए। शत्रुओं के सिरों को झुका दीजिए, अपने बन्धुओं के समूह का उत्थान कीजिए और अभिषेक के बाद दिग्विजय प्रारम्भ कर चारों ओर भ्रमण करते हुए अपने पिता द्वारा जीती गयी भी सात द्वीपों के अलंकार वाली इस धनधान्य सम्पन्ना पृथ्वी को फिर से अपने अधीन कीजिए। यही आपके लिए (सर्वोत्तम) समय है अपने प्रताप को प्रतिष्ठित करने का।

आरूढप्रतापो राजा त्रैलोक्यदर्शीव सिद्धादेशो भवति, इत्येतावदभिधायोपशशाम। उपशान्तवचसि शुकनासे चन्द्रापीडस्ताभि-रमलाभिरुपदेशवाग्भिः प्रक्षालित इव, उन्मीलित इव, स्वच्छीकृत इव, निर्मृष्ट इव, अभिषिक्त इव, अभिलिप्त इव, अलङ्कृत इव, पवित्रीकृत इव, उद्भासित इव, प्रीतहृदयों मुहूर्त्तं स्थित्वा स्वभवनम् आजगाम।

शब्दार्थ - आरूढ-प्रतापः राजा = जिसके प्रताप का प्रभाव स्थापित हो गया है, जम गया है, ऐसा राजा। आरूढः प्रतापः यस्य तथाभूतः। जिस राजा का प्रताप स्थापित और सुदृढ हो जाता है उसके आदेश का सभी पालन करते हैं यही बात आगे उपमा देते हुए कहते हैं। त्रैलोक्यदर्शी इव = तीनों लोकों को देखने वाले योगी के समान। त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी, त्रिलोकी एव त्रैलोक्यम्। त्रिलोकी से स्वार्थ में ष्यञ्´ प्रत्यय हुआ है। त्रैलोक्यम् पश्यति इति त्रैलोक्यदर्शी। त्रैलोक्य+दृश्+णिन् प्रत्यय। सिद्धादेशः भवति = आज्ञाएँ सफल होती हैं, जिस प्रकार तीनों लोकों की दृष्टि वाला सिद्ध योगी जो कह देता है वह सत्य हो जाता है उसी प्रकार अपने प्रताप को जमा लेने वाले राजा के आदेश अनुल्लंघित और अमोघ होते हैं, उसकी आज्ञा का निश्चित रूप से पालन होता है। यहाँ उपमालंकार है। सिद्धः आदेशः यस्य सः सिद्धादेशः। इति एतावत् अभिधाय = इस प्रकार इतना कहकर जिस प्रकार त्रैलोक्यदर्शी सिद्ध योगी के वचन सत्य होते हैं, उसी प्रकार अपने प्रताप को सुदृढ़ कर लेने वाले राजा का आदेश अमोघ होता है। इस प्रकार इतना कहकर (शुकनास) चुप हो गये। अभि+धा+कत्वा(ल्यप्)। उपशशाम = चुप हो गये। शुकनास ने उपदेश देना समापत कर दिया। उप+शम्+लिट् लकार, प्रथम पुरुष एकवचन। उपशान्तवचसि शुकनासे = शुकनास के उपदेश के वचनों को समाप्त कर देने पर, वचन बोलने से विराम लेने पर। उपशान्तं वचः यस्य सः उपशान्तवचः तस्मिन्। 'यस्य च भावेन भावलक्षणम्' से सप्तमी विभक्ति हुई है। चन्द्रापीडः = राजकुमार चन्द्रापीड। चन्द्रापीड पर शुकनास के उपदेश का किस प्रकार अद्भुत प्रभाव पड़ा और उसने कैसा अनुभव किया इसका वर्णन अनेक उत्प्रेक्षाओं द्वारा किया गया है। ताभिः अमलाभिः उपदेशवाग्भिः = उन निर्मल उपदेश के वचनों से। प्रक्षालितः इव = मानो धुले हुए समान प्र + क्षाल् + क्त। उन्मीलितः इव = खिले हुए के समान, जैसे कमल आदि खिल उठते हैं उस प्रकार से आनन्द से खिले हुए, उत् , मील्+क्त प्रत्यय। स्वच्छीकृतः इव = स्वच्छ बना दिये गये के समान। निर्मृष्टः इव = पोंछा गया-सा, माँजा गया-सा। निर् + मृज् + क्त। अभिषिक्तः इव = नहलाया गया-सा। अभि + सिच् + क्त प्रत्यय। अभिलिप्त इव = मानो लेप कर दिया गया हो। अभि + लिप् + क्त। अलंकृत इव = मानो आभूषणों से सजा दिया गया हो। अलम् + कृ + क्त प्रत्यय। पवित्रीकृत इव = मानों पवित्र कर दिया गया हो, अपवित्रः पवित्र सम्पद्यमानः कृतः, पवित्र+कृ+च्वि+क्त। उद्भासितः इव = चमकले हुए-सा, मानो चमक आ गयी हो। उत+भास्+क्त प्रत्यय। प्रीतहृदयः = प्रसन्न मन

से युक्त होकर, प्रीतं हृदयं यस्य तथाभूतः, मन में आनन्द का अनुभव करते हुए। मुहुर्त्तम् स्थित्वा = कुछ देर रुककर। स्वभवनम् आजगाम = अपने भवन को लौट आया। आ + गम् + लिट् लकार। स्वस्य भवनम् स्वभवनम्। अपने महल में आ गया।

हिन्दी भावार्थः- शुकनास के अपना कथन समाप्त कर देने पर चन्द्रापीड ने उन उपदेश के निर्मल वचनों से ऐसा अनुभव किया मानो उसे धोया गया हो, मानो वह खिल उठा हो, मानो उसे स्वच्छ कर दिया गया हो, मानो पोंछ दिया गया हो, मानो स्नान कराया गया हो, मानो लेप किया गया हो, मानो आभूषणों से सजा दिया गया हो, मानो पवित्र कर दिया गया हो, मानो चमक ला दी गयी हो। इस प्रकार मन ही मन आनन्दित वह कुछ देर रुककर अपने भवन को लौट आया।

अभ्यास प्रश्न 2

बहुविकल्पीय

1. तुम उपहास के पात्र न बनो ऐसा किसने कहा -
   क. चन्द्रापीड ख. तारापीड ग. शूद्रक घ. शुकनास
2. पूर्वपुरूषैरूढां धुरा में धुरा का क्या अर्थ है -
   क. भार ख. उत्साह ग. लाभ घ. हानि

रिक्त स्थान की पूर्ति करें -

3. अवनमय .... शिरांसि।
4. ऐसा राजा जिसका प्रताप .... हो गया है।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न

1- चंचल हृदय वाले और बोधरहित को ही धन किससे पागल बना देता है ?

2- किसने बड़े यत्न से आपमें संस्कार डाले हैं ?

3- आपके गुणों को देखकर उपजे सन्तोष ने मुझे यह सब कहने के लिए प्रेरित किया है यह किसने कहा ?

4- शुकनास के उपदेश का किस प्रकार अद्भुत प्रभाव पड़ा ?

5- शुकनास के अपना कथन समाप्त कर देने पर चन्द्रापीड कहा चला गया ?

5.4-सारांश

इस इकाई का अध्ययन करने से आपने यह जाना कि शुकनास के द्वारा अपना कथन समाप्त कर देने पर चन्द्रापीड ने उन उपदेशों के निर्मल वचनों से ऐसा अनुभव किया मानो उसे धोया गया हो, मानो वह खिल उठा हो, मानो उसे स्वच्छ कर दिया गया हो, मानो पोंछ दिया गया हो, मानो स्नान कराया गया हो, मानो लेप किया गया हो, मानो आभूषणों से सजा दिया गया हो, मानो पवित्र कर दिया गया हो, मानो चमक ला दी गयी हो। इस प्रकार मन ही मन आनन्दित वह कुछ देर रुककर अपने भवन को लौट आया। उपदेश इस प्रकार थे - विषयसुख तुम्हें कुमार्ग में न ले जाये, आसक्ति तुम्हें पतन में न डाले, सुख तुम्हें कर्त्तव्य से दूर न कर दे। निश्चय ही, आप स्वभाव से ही धैर्यवान् हैं और पिता ने भी बड़े यत्न से आपमें संस्कार डाले हैं। चंचल हृदय

वाले और बोधरहित को ही धन अहंकार से पागल बना देते हैं, फिर भी आपके गुणों को देखकर उपजे सन्तोष ने मुझे यह सब कहने के लिए प्रेरित किया है। यही मैं आपसे बार-बार कह रहा हूँ। विद्वान् को भी, प्रबुद्ध को भी, महान् शक्तिशाली या मनस्वी को भी, उच्च कुल में उत्पन्न व्यक्ति को भी, धैर्यवान् को भी और (अपनी समुन्नति के) प्रयत्न में लगे रहने वाले पुरुष को भी यह दुष्टा लक्ष्मी दुष्ट बना देती है। सभी प्रकार से पिता द्वारा मंगलाचारों के साथ किये जाने वाले। अत: उपर्युक्त वर्णनों के अनुशीलन से आपको शुकनास द्वारा चन्द्रापीड को दिये गये उपदेशों का अपने शब्दों में उल्लेख करने का पर्याप्त अवसर प्राप्त है । इसीलिए आप इस इकाई से प्राप्त सभी शिक्षाओं को समझा सकेंगे।

5.5 शब्दावली

शब्द	अर्थ
चन्द्रापीडः	राजकुमार चन्द्रापीड
ताभिः अमलाभिः उपदेशवाग्भिः	उन निर्मल उपदेश के वचनों से
प्रक्षालितः इव	मानो धुले हुए
उन्मीलितः इव	खिले हुए के समान,
स्वच्छीकृतः इव	स्वच्छ बना दिये गये के समान
निर्मृष्टः इव	पोंछा गया-सा, माँजा गया-सा
अभिषिक्तः इव	नहलाया गया-सा
अभिलिप्त इव	मानो लेप कर दिया गया हो
अलंकृत इव	मानो आभूषणों से सजा दिया गया हो
पवित्रीकृत इव	मानों पवित्र कर दिया गया हो,
उद्भासितः इव	चमकले हुए
प्रीतहृदयः	प्रसन्न मन से युक्त होकर,
मुहुर्त्तम् स्थित्वा	कुछ देर रुककर।
स्वभवनम् आजगाम	अपने भवन को लौट आया।

5.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1 –

1. ग 2. घ 3. पूजा 4. क्रोध

अभ्यास प्रश्न 2 -

1. घ 2. क 3. द्विषतां 4. स्थापित

अति लघु-उत्तरीय प्रश्न -

(1) अहंकार से (2) पिता ने (3) शुकनास ने कहा

(4) अनेक प्रकार का (5) अपने महल

5. 7 सदर्भ ग्रन्थ सूची

1-ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
कादम्बरी	बाणभट्ट	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

5. 8 उपयोगी पुस्तकें

1- ग्रन्थ नाम	लेखक	प्रकाशक
शिवराजविजय	अम्बिकादत्तव्यास	चौखम्भा संस्कृत भारती वाराणसी

5. 9 निबन्धात्मक प्रश्न

1 चन्द्रापीड के व्यक्तित्व का उल्लेख अपने शब्दों में कीजिये।

2. इस इकाई पर एक विस्तृत निबन्ध लिखिये।

3. बाणभट्ट की गद्य शैली की विवेचना कीजिये।

4. सिद्ध कीजिये कि बाणभट्ट एक सफल गद्यकार है।